विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की बनावट

वर्तमान विश्व आर्थिक संकट ने न केवल वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था के मूलभूत अंतर्विरोधों को तीखे ढंग से उजागर किया है बल्कि इसकी संरचना की परतों को खोलकर रख दिया है। कई सारी प्रवृत्तियां जो लम्बे समय से विकसित हो रही थीं वे अपनी परिपक्व स्थिति में सामने आ गई हैं। इन सबके अध्ययन से विश्व पूंजीवादी व्यवस्था में कार्यरत अंतर्विरोधों को उनकी समग्रता में समझना और चिह्नित करना आसान हो जायेगा। कहने की बात नहीं है कि वैश्विक क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए यह निहायत जरूरी है। यह इसलिए और भी ज्यादा जरूरी है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर एकदम जड़मति का परिचय देते हुए वैश्विक क्रांति की पचास साल पुरानी रणनीति और रणकौशल दुहराते चला जा रहा है।

प्रस्तुत लेख में विश्व पूंजीवाद की संरचना के कुछ पहलुओं पर बात की जायेगी जो आज इसकी गतिकी समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

I

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की क्षेत्रीय (sectoral) संरचना

पूंजीवाद की उत्पत्ति के समय से ही अर्थव्यवस्था की क्षेत्रीय संरचना में लगातार परिवर्तन होता गया है। सामंती व्यवस्था के अंतिम काल में अर्थव्यवस्था में कृषि प्रधान थी। इसके मुकाबले दस्तकारी उद्योग अभी भी गौण था। ज्यादातर आबादी खेती में लगी हुई और उस पर निर्भर थी। कुल उत्पादन में कृषि का हिस्सा ही प्रमुख था।

लेकिन पूंजीवादी उत्पादन की शुरुआत के साथ यह बदलने लगा। अर्थव्यवस्था में उद्योग का हिस्सा बढ़ने लगा। यह मैनुफैक्चरिंग के जमाने में भी बढ़ने लगा था। लेकिन जब मशीनों से उत्पादन शुरू हुआ, खासकर भाप के इंजन के आविष्कार के बाद, तो यह बहुत द्रुतगति से होने लगा। उद्योग के विकास का प्रभाव कृषि पर भी पड़ा। उसमें किसी हद तक आधुनिक तरीकों का प्रयोग शुरू हुआ। इससे भी बड़ी बात यह कि कृषि पर निर्भर आबादी कम होने लगी और वह शहरों में, उद्योगों की ओर पलायन करने लगी। शहरों की आबादी बढ़ने लगी और देहातों की आबादी कम

होने लगी। इंग्लैण्ड जैसे प्रमुख पूंजीवादी देश में तो उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में ही आबादी का अधिकांश हिस्सा शहरों का वासी हो गया था।

अर्थव्यवस्था की क्षेत्रीय संरचना में यह परिवर्तन, कुल उत्पादन और श्रम शक्ति में विभिन्न क्षेत्रों के हिस्से में परिवर्तन, उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में जारी रहा। यही नहीं,बीसवीं सदी में इस परिवर्तन की प्रक्रिया और तेज हुई। खासकर कृषि पर निर्भर आबादी में तेजी से कमी हुई। लेकिन इसके साथ यह भी हुआ कि अर्थव्यवस्था का तीसरा क्षेत्र यानी तथाकथित सेवा क्षेत्र तेज गति से आगे बढ़ने लगा। जहां पहले कृषि के मुकाबले उद्योग का क्षेत्र तेज गति से बढ़ रहा था, अब इन दोनों के मुकाबले सेवा क्षेत्र तेजी से बढ़ने लगा।

आज दुनिया के पैमाने पर अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की क्या स्थिति है, उसे इस तालिका से समझा जा सकता है:

तालिका-1

देश	सकल घरेलू उत्पाद में प्रतिशत हिस्सा (2003)			श्रम शक्ति का हिस्सा (2003)		
	कृषि	उद्योग	सेवा	कृषि	उद्योग	सेवा
संयु. अमेरिका	1	22	77	1.6	12.7	85.7
कनाडा	3	27	70	1.9	15.7	82.4
फ्रांस	3	22	75	4.3	17.4	78.3
जर्मनी	1	31	68	2.6	24.0	73.4
ब्रिटेन	1	26	73	1.4	12.8	85.5
इटली	3	31	67	4.4	21.5	74.1
जापान	2	33	66	4.4	18.2	77.4
रूस	7	35	59	9.2	22.4	68.0
चीन	18	49	33	43.1	12.1	44.8
भारत	28	24	48	52.1	12.2	35.2
ब्राजील	8	31	60	15.1	12.0	72.4

स्रोत : Britainnica Book of the year,2007,Page-743,786-90

यहां यह रेखांक्ति करने की बात है कि ये आंकड़ें 2003 के हैं। तब से बीते सालों में और परिवर्तन हुए हैं मसलन, भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का हिस्सा 2009 तक 20 प्रतिशत से नीचे आ गया हालांकि कृषि में लगी श्रम शक्ति में इसी अनुपात में परिवर्तन नहीं हुआ।

तालिका यह दिखाती है कि विकसित साम्राज्यवादी देशों में कृषि का हिस्सा बहुत कम, एकदम गौण हो गया है। कुल उत्पादन में कृषि का हिस्सा विभिन्न देशों में 1 से 7 प्रतिशत और कुल श्रम शक्ति में महज 2 से 9 प्रतिशत रह गया है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि कृषि की यह गौण स्थिति तब भी हो गयी है जबकि पूंजीवाद की पैदाइश के समय से ही कृषि उत्पादकता में वृद्धि उस दर से नहीं हुई जितनी उद्योग में। इतना ही नहीं, उत्पादकता में तेज वृद्धि के चलते उद्योग ने कृषि

का दोहन भी किया। पूरे औद्योगिक विकास के दौरान कृषि दोयम दर्जे की स्थिति में बनी रही और औद्योगिक विकास के लिए पूंजी संचय का काम करती रही।

कृषि में उत्पादकता के धीमे विकास के बावजूद स्थिति यहां पहुंच गई है कि श्रम शक्ति का एक अत्यंत छोटा हिस्सा ही कृषि उत्पादों की जरूरत को पैदा कर दे रहा है। इतना ही नहीं, साम्राज्यवादी देशों में (आय के वर्तमान विभाजन को देखते हुए) यह उत्पादन इतना ज्यादा हो जा रहा है कि बाकी दुनिया में बेचने के लिए साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग हर संभव कोशिश कर रहा है। विश्व व्यापार संगठन के असमान प्रावधानों से लेकर साम्राज्यवादी सरकारों द्वारा सीधे दबाव की हर तरकीब अपनाई जा रही है। इसके बाद भी कभी-कभी स्थिति यह हो जाती है कि साम्राज्यवादियों को अपने यहां कृषि उत्पादन को हतोत्साहित करना पड़ता है।

कृषि के मुकाबले उद्योग का हिस्सा कुल उत्पादन और श्रम शक्ति में काफी ज्यादा है। यह विभिन्न साम्राज्यवादी देशों में 22 से 35 प्रतिशत (उत्पादन) और 13 से 24 प्रतिशत (श्रम शक्ति) है। यहां यह रेखांकित करना होगा कि पूंजीवादी गणना पद्धति में सेवा क्षेत्र में गिने जाने वाले कुछ क्षेत्रों मसलन यातायात और संचार को उद्योगों में गिना जाना चाहिए। इसके बावजूद यह सहज दृष्टव्य है कि आज उद्योगों में उत्पादकता इस कदर बढ़ गई है कि (पूंजीवादी आय विभाजन के दायरे में) श्रमशक्ति की अल्प संख्या सारे समाज की जरूरत से ज्यादा उत्पादन कर दे रही है। औद्योगिक उत्पादन में उत्पादकता के तेज विकास ने औद्योगिक क्षेत्र में लगी श्रम शक्ति को सापेक्षिक तौर पर कम किया है। यहां यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि औद्योगिक श्रम शक्ति का एक बड़ा हिस्सा उन उद्योगों में लगा हुआ है जो सैन्य औद्योगिक प्रतिष्ठान कहलाते हैं और जो मनुष्य की सामान्य आवश्यकताओं का नहीं बल्कि उसके संहार का सामान तैयार करते हैं। इनको निकाल देने के बाद औद्योगिक उत्पादन में लगी हुई श्रम शक्ति और कम हो जायेगी।

यह पूंजीवाद की लाक्षणिक विशेषता है कि इसके विकास के साथ इसमें तथाकथित सेवा क्षेत्र का अधिकाधिक प्राधान्य होता जाता है। इसे तालिका के आंकड़े प्रदर्शित करते हैं। विभिन्न साम्राज्यवादी देशों में सेवा क्षेत्र का हिस्सा 59 से 77 प्रतिशत (उत्पादन) तथा 68 से 86 प्रतिशत (श्रम शक्ति) है। यहां यह गौरतलब है कि सेवा क्षेत्र में उत्पादकता उद्योगों से कम है जबकि कृषि से ज्यादा।

पूंजीवादी गणना पद्धति में जिन बहुत से कामों को सेवा क्षेत्र में गिना जाता है, उसे निकाल देने के बाद भी सेवा क्षेत्र में लगी श्रम शक्ति समूची श्रम शक्ति का बहुलांश बनती है। इन सेवाओं में अधिकांश ऐसी सेवाएं हैं जो पूंजीवाद के खास चरित्र से पैदा होती हैं। इनमें से कई शुद्ध परजीवी हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य से लेकर नागरिक सेवाएं ऐसी सेवाएं है जिनकी किसी भी समाज में जरूरत पड़ेगी लेकिन व्यापार और वित्त पूर्णतः पूंजीवादी व्यवस्था से पैदा होने वाली सेवाएं हैं। इसी तरह वकालत से लेकर ढेरों दलाली के धन्धे पूंजीवादी व्यवस्था के खास चरित्र से पैदा होते हैं। इसके अलावा प्रशासन और दमन तंत्र की पूरी मशीनरी, राजनीतिक पार्टियां

और उनके नेता तो जिसके छोटे से हिस्से हैं। इन सबका पूरा जखीरा मिलकर पूंजीवाद में सेवा क्षेत्र का निर्माण करता है। यहां हम अन्य तरीके की सेवाओं को फिलहाल छोड़ दे रहे हैं जिनका वैसे तो पूंजीवादी व्यवस्था में अहम स्थान है लेकिन जिसके बारे में बात करते हुए पूंजीवाद बगलें झांकता है मसलन अपराध, वेश्यावृत्ति, भीख इत्यादि।

मजदूर वर्ग के बेशी श्रम की लूट पर टिकी पूंजीवादी व्यवस्था में बाद वाली सेवाओं की संख्या और मात्रा लगातार बढ़ती जाती है। एक ओर शिक्षा, स्वास्थ्य, नागरिक सुविधाओं की स्थिति गौण होती जाती है, दूसरी ओर दलाली, दमनतंत्र, अपराध और वेश्यावृत्ति बढ़ते जाते हैं। चूंकि पूंजीवाद में हर चीज ही खरीद-बेच के जरिये होती है, इसलिए व्यापार और वित्तीय क्षेत्र भी बढ़ता जाता है। उत्पादन भले ही उतना ही हो, वह ज्यादा बार बिकेगा, ज्यादा हाथों से गुजरेगा। ज्यादा लोग व्यापार में लगेंगे, ज्यादा पैसे का आदान-प्रदान होगा।

यह मानव आवश्यकताओं की पूर्ति का मामला नहीं, शोषक पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर बढ़ते परजीवीपन का मामला है। पूंजी का मालिक शोषक और परजीवी है लेकिन जब तक उत्पादन-वितरण या समाज के संचालन में उसकी कोई भूमिका है, तब तक एक बात है। लेकिन यही पूंजी का मालिक जब सटोरिया पूंजीपति में तब्दील हो जाता है या कूपन काट कर जिंदा रहने लगता है तो बात और हो जाती है। तब शोषक पूंजीवादी व्यवस्था में भी वह भिन्न स्थिति ग्रहण कर लेता है। पूंजीवाद के विकास के साथ इन लोगों की संख्या बढ़ती जाती है। साम्राज्यवादी देशों में तो अब यह चरम पर पहुंच रही है।

पूंजीवाद तेज गति से उत्पादकता का विकास करता है। लेकिन उत्पादकता में इस तेज विकास का परिणाम समाज की आम खुशहाली में नहीं बल्कि मजदूर वर्ग की और ज्यादा लूट, उसकी और ज्यादा बदतरी, उसके तथा पूंजीपति वर्ग के बीच और ज्यादा असमानता, पूंजीपति वर्ग के और ज्यादा परजीवीपन तथा परजीवियों की संख्या में और ज्यादा वृद्धि में होता है। आज एकाधिकारी पूंजीवाद, साम्राज्यवाद के ह्रासमान और परजीवी चरित्र के ये सामान्य लक्षण हैं।

पिछड़े पूंजीवादी देशों में भी पूंजीवाद की यही मूल प्रवृत्ति दृष्टिगोचर है लेकिन यह इनके विकृत और असंतुलित पूंजीवादी विकास के साथ जटिल रूप से गुंथी हुई है। उपरोक्त तालिका में पिछड़े देशों में से तीन लाक्षणिक देशों को प्रस्तुत किया गया है। ब्राजील एक मध्यम स्तर का औद्योगिक देश है तो भारत और चीन अपेक्षाकृत पिछड़े। विकास के स्तर के हिसाब से भारत में सेवा क्षेत्र का अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा है तो चीन में उद्योग का हिस्सा प्रमुख है।

पिछड़े देशों में असंतुलित, विकृत पूंजीवादी विकास का परिणाम इस रूप में सामने आया है कि वहां कृषि पर आबादी की निर्भरता उसके कुल अर्थव्यवस्था में योगदान से बहुत ज्यादा है और इन देशों में अभी से सेवा क्षेत्र का प्राधान्य हो गया है। जर्मनी में यदि कुल 4 प्रतिशत का योगदान करने वाली कृषि पर 2.6 प्रतिशत

आबादी निर्भर है तो यह बड़ी समस्या नहीं है लेकिन यदि भारत में 20 प्रतिशत का योगदान करने वाली खेती पर 50 प्रतिशत आबादी निर्भर है तो यह समस्या बहुत विकराल रूप धारण कर लेती है। साम्राज्यवादी देशों में सेवा क्षेत्र का विकास संगठित क्षेत्र के रूप में होता है लेकिन पिछड़े देशों में सेवा क्षेत्र का विकास इसमें लगे अधिकांश लोगों के लिए कृषि व उद्योग से इतर किसी तरह जिन्दा रहने के लिए कुछ करने के रूप में होता है। यह मूलतः 'अनौपचारिक' क्षेत्र का विकास होता है। ये दोनों ही चीजें पिछड़े देशों में भयंकर कंगाली को जन्म देती हैं।

साम्राज्यवादी देशों की उपरोक्त संरचना और पिछड़े देशों की पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं की संरचना और उसकी गति में संबंध है। पिछड़े देशों की कृषि को साम्राज्यवादी देशों की कृषि के साथ प्रतियोगिता में उतरना पड़ रहा है, उस कृषि से जो न केवल काफी मशीनीकृत और विकसित है बल्कि जिसे साम्राज्यवादी सरकारें भारी मात्रा में सब्सिडी भी दे रही हैं। विकसित साम्राज्यवादी देश बहुत आसानी से यह सब्सिडी दे सकते हैं। इसके मुकाबले पिछड़े देशों की पिछड़ी कृषि कहीं नहीं ठहरती। विश्व व्यापार संगठन के प्रावधान यदि न भी होते तब भी पिछड़े देशों की सरकारों द्वारा अपने यहां कृषि को बहुत सब्सिडी देना संभव नहीं होता। साम्राज्यवादी देशों के साथ प्रतियोगिता में तीसरी दुनिया के पिछड़े पूंजीवादी देशों की कृषि बहुत तेजी से तबाह हो रही है। वस्तुतः वहां की छोटी किसानी व्यवस्था तबाह हो रही है। और छोटे मझोले किसान तबाह हो रहे हैं। चूंकि इन तबाह होते किसानों के लिए अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में जगह नहीं है इसलिए देहातों में कंगाली भयंकर गति से बढ़ रही है। ये देखते हुए कि इन पिछड़े देशों में अभी भी एक बड़ी संख्या कृषि पर निर्भर है, स्थिति की गंभीरता का अंदाज लगाया जा सकता है।

इस समस्या का दूसरा पहलू भी है। तीसरी दुनिया के पिछड़े देशों में तकनीक का विकास काफी पीछे है। लेकिन इसके बावजूद जो तकनीक अधिकाधिक वहां इस्तेमाल की जा रही है, वह उपरोक्त स्थिति को और गंभीर बना रही है। जब पिछड़े देशों में ट्रैक्टर, कम्बाइन और अन्य मशीनों का इस्तेमाल होता है तो वहां बड़ी संख्या में वह आबादी फालतू बना दी जाती है जिसको खपने के लिए अन्य क्षेत्रों में गुंजाइश बहुत कम है। इस तरह पिछड़े देशों में उत्पादकता का विकास सीधे-सीधे कंगाली में विकास करता है।

उद्योग के क्षेत्र में भी यही स्थिति है। तीसरी दुनिया के उद्योगों में दोयम-तेयम दर्जे की तकनीक है। लेकिन तब भी वह इतनी पूंजी सघन है कि कृषि या दस्तकारी से उजड़ रही आबादी को नहीं खपा रही है। दूसरी ओर साम्राज्यवादी देशों की तकनीक और उन्नत होती जा रही है तथा उनसे प्रतियोगिता में पिछड़े देशों के उत्पादन को और पूंजी सघन होना पड़ रहा है। इस तरह साम्राज्यवादी देशों में उत्पादन की संरचना प्रत्यक्ष तौर पर पिछड़े देशों को प्रभावित कर रही है। एक एकीकृत पूंजीवादी दुनिया का हिस्सा होने के कारण पिछड़े देश बुरी तरह झकझोरे जा रहे हैं। जहां इन देशों का एक छोटा सा हिस्सा साम्राज्यवादी देशों के धनिकों के जीवन स्तर का

उपभोग कर रहा है, वहीं बहुलांश भयंकर बदहाली की अवस्था में धंसता चला जा रहा है। साम्राज्यवादी देशों की पतनशीलता और परजीविता इन देशों में और भी भौंड़े और विकृत तरीके से अभिव्यक्त हो रही है।

II
वैश्विक उत्पादन-वितरण का पुनर्गठन

पूंजीवाद अपनी पैदाइश के समय से ही एक वैश्विक व्यवस्था रहा है और इसके उत्पादन और वितरण की व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा है। औद्योगिक पूंजीवाद में पहले-पहल कपड़ा उद्योग प्रधान था। यह बाद में भाप के इंजन और रेलों के साथ बना रहा। बाद के दौर में बिजली, रसायन तथा मोटर गाड़ी उद्योग में प्रधानता हासिल कर ली। आज कम्प्यूटर, इलेक्ट्रानिक्स, दूर संचार तथा बायोतकनालाजी उद्योग चढ़ती पर है।

विभिन्न समयों में विभिन्न उद्योगों की प्रधानता के दौर में वैश्विक पैमाने पर उत्पादन और वितरण में परिवर्तन होता रहा है। यह साथ ही विभिन्न देशों के उत्थान और पतन के साथ जुड़ा रहा है। उन्नीसवीं सदी में दुनिया का वर्कशॉप कहा जाने वाला इंग्लैण्ड बीसवीं सदी में पीछे छूट गया और संयुक्त राज्य अमेरिका प्रमुख औद्योगिक देश बन गया। इस समय तो वह खिसक कर पांचवे-छठे स्थान पर जा चुका है।

पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन-वितरण को वित्तीय कारोबार से अलग नहीं किया जा सकता। वित्तीय लेन-देन पूंजीवादी-वितरण को बहुत सुगम बना देता है और इस तरह पूंजीवाद के विकास को त्वरित करता है। एक विकसित वित्तीय व्यवस्था के बिना पूंजीवादी उत्पादन लगातार बाधित होता रहेगा और उसका विकास बहुत मंद हो जायेगा।

इस कारण जब किसी देश में पूंजीवादी उत्पादन का तेज विकास होता है तो वहां वित्तीय कारोबार का भी तेज विकास होता है। धीमे-धीमे यह विकास अपनी एक स्वतंत्र गति हासिल कर लेता है और वास्तविक उत्पादन-वितरण से भी तीव्र गति पकड़ लेता है। उत्पादन का केन्द्र न केवल वित्तीय कारोबार का भी केन्द्र हो जाता है बल्कि कालांतर में उत्पादन कहीं और स्थानांतरित हो जाने पर भी वह लम्बे समय तक वित्तीय केन्द्र बना रहता है। अतीत में हॉलैण्ड के साथ यही हुआ था।

अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में जब इग्लैण्ड सबसे प्रमुख औद्योगिक देश के रूप में उभरा तो वह क्रमशः वित्तीय कारोबार का भी केन्द्र बनता गया। लंदन ने एम्सटर्डम को प्रतिस्थापित कर दिया। लंदन दुनिया का सबसे बड़ा वित्तीय कारोबार का केन्द्र बन गया। लेकिन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इंग्लैण्ड का पराभव होने लगा। इसके मुकाबले संयुक्त राज्य अमेरिका,जर्मनी और जापान जैसे नये गतिमान देश

उभरने लगे। इंग्लैण्ड के उद्योग इन देशों में यहां तक कि उपनिवेशों में भी स्थानांतरित होने लगे। इंग्लैण्ड का एक हद तक का विऔद्योगिकरण होने लगा। कभी इंग्लैण्ड के जो इलाके सघन औद्योगिक केन्द्र थे अब व वीरान होने लगे।

जहां तक इग्लैण्ड के पूंजीपति वर्ग का संबंध था वह अधिकाधिक वित्तीय कारोबार में लगने लगा, परजीवी होने लगा। अब वह उद्योगों में अपनी पूंजी लगाने के बदले अधिकाधिक कूपन काटकर ऐश करने लगा। बीसवीं सदी की शुरुआत में हॉब्सन जैसे ब्रिटिश उदारवादियों ने इस पर चिंता व्यक्त की थी कि इंग्लैण्ड दुनिया के औद्योगिक देशों में अपनी अग्रणी स्थिति खोता जा रहा है और परजीवी होता जा रहा है। पचास साल बाद यह चिंता कटु यथार्थ में रूपान्तरित हो चुकी थी।

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में यह सब एक भिन्न तरीके से दुहराया जा रहा है। यह प्रक्रिया अत्यंत जटिल है लेकिन तब भी इसकी कुछ प्रवृत्तियां स्पष्ट हैं: विकसित साम्राज्यवादी देशों के लिए कुछ पुराने उद्योग एकदम गौण हो गये हैं जैसे कपड़ा या लोहा उद्योग। कुछ भारी उद्योग अब इसके लिए उतने महत्व के नहीं रह गये हैं जैसे इस्पात या कार उद्योग। इनमें वित्तीय क्षेत्र की प्रधानता लगातार बढ़ रही है। सेवा क्षेत्र के समानान्तर 'ज्ञान उद्योग' का महत्व इनके लिए बढ़ रहा है। ये प्रवृत्तियां साम्राज्यवादियों को और ज्यादा पतनशील तथा परजीवी बनाने के साथ उनके साम्राज्यवादी प्रभुत्व के ताने-बाने को और मजबूत कर रही हैं।

दुनिया के सबसे शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश संयुक्त राज्य अमेरिका के मामले में ये प्रवृत्तियां सबसे ज्यादा मुखर हैं। कपड़ा, लोहा, इस्पात उद्योग वहां मृतप्राय हैं और अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने उन्हें बाहर स्थानांतरित कर दिया है। यही नहीं, समूची बीसवीं सदी में दुनिया भर में हावी अमेरिकी कार उद्योग, जो एक समय अमेरिकी पूंजीवाद का पर्यायवाची था, अब मर रहा है और वहां विदेशी कार उत्पादकों का बोलबाला है। अमेरिकी साम्राज्यवादी इन सबकी आउटसोर्सिंग कर रहे हैं। इसके बदले वे कम्प्यूटर, इलेक्ट्रानिक्स, दूर-संचार और बायोतकनालाजी तथा 'ज्ञान उद्योग' पर केन्द्रित कर रहे हैं। अमेरिका के पुराने औद्योगिक शहर वीरान हो रहे हैं। इसके साथ ही अमेरिकी वित्तीय कारोबार सबसे ज्यादा फल-फूल रहा है।

पुराने उद्योगों का साम्राज्यवादी देशों से विस्थापन दुनिया में देशों के बीच श्रम-विभाजन में परिवर्तन ला रहा है। पहले जहां उपनिवेश या अर्ध-उपनिवेश साम्राज्यवादी देशों के लिए कच्चे मालों (खनिज सम्पदा या कृषि) के आपूर्तिकर्ता थे वहीं अब वे अधिकाधिक औद्योगिक मालों के आपूर्तिकर्ता बनते जा रहे हैं। साम्राज्यवादी देशों की ओर उनके निर्यात में कच्चे मालों के मुकाबले औद्योगिक मालों (अंतिम या मध्यवर्ती) की प्रधानता हो गई है।

एक अन्य चीज ने इसको बहुत गति प्रदान की है। आवागमन तथा दूर संचार के साधनों में तेज विकास के चलते अब यह बहुत आसान हो गया है कि किसी एक वस्तु का उत्पादन करने के लिए विभिन्न देशों में उपलब्ध अलग-अलग तरह के लाभों का इस्तेमाल किया जाय। कहीं के सस्ते श्रम का, कहीं के करों में छूट का, कहीं

उपलब्ध कच्चे माल का तो कहीं मौजूद विशिष्ट कुशलता का इस्तेमाल कर एक वस्तु के उत्पादन में महत्तम लाभ हासिल किया जा सकता है। साम्राज्यवादी बहुराष्ट्रीय कंपनियां इसका इस्तेमाल करके विकेन्द्रीकृत केन्द्रीयकरण के जरिये उत्पादन कर रही हैं। यह न केवल कार उद्योग जैसे परम्परागत उद्योग में हो रहा है बल्कि कम्प्यूटर-इलेक्ट्रॉनिक्स और दूर-संचार जैसे नये उद्योगों में भी हो रहा है। यह आधुनिकतम सेवा क्षेत्र में भी हो रहा है।

इन सबके कारण जहां कुछ पिछड़े देशों में औद्योगिक उत्पादन बढ़ रहा है वहीं साम्राज्यवादी देशों में किसी हद तक विऔद्योगीकरण हो रहा है। उनका औद्योगिक ह्रास हो रहा है और परजीवीपन बढ़ रहा है। इसे चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के संदर्भ में समझा जा सकता है।

वर्तमान संकट के कारणों को तलाशते हुए साम्राज्यवादी पूंजीपतियों का एक धड़ा वैश्विक असंतुलन की समस्या तक पहुंचा। इसके अनुसार अमेरिकी बचत नहीं कर रहे हैं बल्कि कर्ज लेकर उपभोग कर रहे हैं। उपभोग के लिए मालों का उत्पादन करने के बदले वे इन्हें चीन से आयात कर रहे हैं। इससे चीन और अमेरिका के बीच व्यापार घाटा चीन के पक्ष में बढ़ता जा रहा है। चीन निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा (डॉलर) को फिर अमेरिकी सरकार को कर्ज दे दे रहा है। अमेरिकी सरकार इस कर्ज से उपभोक्ताओं और पूंजीपतियों को सस्ता ऋण उपलब्ध करा दे रही है। इस सस्ते ऋण की उपलब्धता से सट्टेबाजों को सट्टेबाजी के लिए खूब धन हासिल हो जा रहा है। इसके चलते वित्तीय सट्टेबाजी का बुलबुला पैदा हो रहा है जो फिर फूट कर संकट को जन्म दे रहा है। इसलिए संकट का समाधान यह है कि इस वैश्विक असंतुलन को समाप्त किया जाय। चीन से अमेरिका को निर्यात कम हो और वहां से आयात ज्यादा।

लेकिन इस असंतुलन की जड़ में तो वैश्विक उत्पादन का उपरोक्त पुनर्गठन है। आज चीन दुनिया का सबसे बड़ा लोहा और इस्पात उत्पादक देश है जबकि अमेरिका में यह उद्योग मृतप्राय है। ऐसे में चीन से लोहा और इस्पात का अमेरिका में चीन से आयात होगा ही। दूसरी ओर आम उपभोग की जिन चीजों का आयात चीन से हो रहा है उनमें से ढेर सारी का चीन में उत्पादन अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कंपनियां करवा रही हैं। चीन कोई आधुनिक, उच्च तकनीक वाले मालों का निर्यातक नहीं है। वह उन्हीं मालों का निर्यातक है जिनका अब अमेरिका में उत्पादन नहीं हो रहा है या जिनका साम्राज्यवादी कंपनियां विकेन्द्रीकृत केन्द्रीकरण के तहत उत्पादन करवा रही हैं। दुनिया भर से उपभोक्ता मालों को बटोरकर अमेरिका में उनकी आपूर्ति करने वाले वाले वालमार्ट का सबसे बड़ा आपूर्तिकर्ता चीन है तो इसी कारण। इस तरह चीन के साथ इस असंतुलन को समाप्त करने के लिए उत्पादन के उपरोक्त पुनर्गठन को ही समाप्त करना पड़ेगा।

यहां यह रेखांकित करना होगा कि वैश्विक उत्पादन एवं वितरण का पुनर्गठन बहुत असमान है। सभी साम्राज्यवादी देशों से पुराने उद्योगों का पलायन एक

जैसा नहीं है। इसी तरह सभी में आधुनिक तकनीक वाले उद्योगों का विकास या वित्तीय कारोबार की विशालता एक जैसी नहीं है। तीसरी दुनिया के पिछड़े देशों में जहां पुराने उद्योग या कल-पुर्जों के उद्योग जा रहे हैं। वे तीसरी दुनिया के मुट्ठी भर देश हैं। इन्हें पिछड़े देशों में जाने वाली प्रत्यक्ष पूंजी निवेश की मात्रा से समझा जा सकता है। पिछले सालों में इस पूंजी का बहुलांश दस-बारह देशों में गया है। बहुत बड़ी संख्या में पिछड़े देश,खासकर अफ्रीकी देश इससे वंचित हैं, उस प्रक्रिया से जो स्वयं अपने-आप में साम्राज्यवादी लूट का सशक्त और नवीनतम तरीका है।

वैश्विक उत्पादन और पुनर्गठन की इस प्रक्रिया के चलते साम्राज्यवादी पूंजी ने साम्राज्यवादी देशों में श्रम के मुकाबले बहुत ज्यादा श्रेष्ठता हासिल की है। उद्योगों का दूसरे देशों में विस्थापन ही नहीं, इसकी आशंका और धमकी मात्र श्रम की पूंजी के मुकाबले सौदेबाजी की क्षमता को बहुत कमजोर कर देती है। इसी तरह एक ही कल-पुर्जे की विभिन्न देशों से आपूर्ति या तैयार माल की कई देशों से आपूर्ति भी किसी देश के मजदूरों की सौदेबाजी की क्षमता को कमजोर कर देती है। पिछले दो-तीन दशकों में ट्रेड यूनियन आंदोलन की कमर तोड़ने में साम्राज्यवादियों ने इसका बखूबी इस्तेमाल किया है। यह इस हद तक हुआ है कि ए.एफ.एल.-सी.आई.ओ. जैसी पतित ट्रेड यूनियनें पिछड़े देशों के मजदूरों को अपना दुश्मन समझने लगी हैं। आउट सोर्सिंग का मामला अमेरिका के चुनावों में मतदाताओं को लुभाने का मुद्दा बनने लगा है। अमेरिकी भारत की राजधानी नई दिल्ली का नाम भले न सुने हों, उन्होंने बी पी ओ के केन्द्र बैंगलौर का नाम जरूर सुन लिया है।

लेकिन उत्पादन-वितरण के पुनर्गठन की इस प्रक्रिया ने पिछड़े देशों में भी मजदूर वर्ग की सौदेबाजी की क्षमता को कमजोर किया है। माल की आपूर्ति के बहुत से स्रोतों की उपलब्धता के अलावा बात यह है कि साम्राज्यवादी पूंजी ने इन देशों में आने के पहले यहां के शासकों से बहुत सी रियायतों की मांग की और पाई। श्रम कानूनों को धता बताना इनमें से एक था। अब श्रम विभाग के अधिकारी खुलेआम कहते हैं कि वे इन साम्राज्यवादी कंपनियों के संयंत्रों में यूनियन नहीं बनने दे सकते।

परन्तु उत्पादन-वितरण के इस पुनर्गठन ने दूरगामी तौर पर समूची दुनिया के पैमाने पर मजदूर वर्ग के संगठन और संघर्ष का आधार तैयार कर दिया है। ठीक वही कारक जो आज साम्राज्यवादी पूंजी के लिए इतने लाभप्रद हैं, उसके खिलाफ जबर्दस्त हथियार बन जायेंगे।

समूची दुनिया के पैमाने पर उत्पादन और वितरण का यह पुनर्गठन वित्त पूंजी द्वारा सारी दुनिया के एकीकरण के साथ-साथ हुआ है। बल्कि वित्तीय कारोबार का एकीकरण तो आज और ज्यादा हुआ है। एक मायने में आज वित्तीय कारोबारी एक पल भी नहीं सो रहे हैं। अमेरिका में शेयर बाजार के बंद होने के कुछ घंटे बाद ही जापान के शेयर बाजार खुल जाते हैं। अमेरिकी सट्टेबाज अभी सो भी नहीं पाये होते हैं कि पूर्वी एशिया के बाजारों की उठा-पटक उनकी नींद उड़ा देती है।

III

वित्तीय कारोबार का फलता-फूलता संसार

मरणासन्न, ह्रासमान और परजीवी पूंजीवाद के वर्तमान दौर में वित्तीय कारोबार ने बहुत ज्यादा महत्व हासिल कर लिया है। वास्तविक उत्पादन और वितरण के मुकाबले यह अधिकाधिक विशाल होता जा रहा है। इसमें पूंजीपति वर्ग पैसे से पैसा बनाने के अपने चिर आकांक्षित लक्ष्य को फलीभूत कर रहा है। लेकिन वह साथ ही समूची पूंजीवादी व्यवस्था को कब्र की तरफ भी ढकेल रहा है।

दुनिया के सबसे बड़े और शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान स्थिति का आकलन करके वित्तीय कारोबार के इस फलते-फूलते संसार और इसके निहितार्थ को समझा जा सकता है।

अमेरिका में पिछले करीब पचास सालों में वित्तीय कारोबार की स्थिति में यह परिवर्तन हुआ है:

तालिका-2

अमेरिकी अर्थव्यवस्था में मैनुफैक्चरिंग व वित्तीय सेवाओं का हिस्सा (प्रतिशत में)

	1950	1960	1970	1980	1990	2000	2003	2004	2005
मैनुफैक्चरिंग	29.3	26.9	23.8	20.8	16.3	14.5	12.7	12.1	12.0
वित्तीय सेवाएं	10.9	13.6	14.0	15.0	18.0	19.7	20.5	20.6	20.4

(स्रोत : Kevin Philips, Bad Money, Viking, 2008,P-31)

अमेरिकी पूंजीवाद में वित्तीय कारोबार की बढ़ती हैसियत को यह तालिका भली-भांति स्पष्ट करती है। समूची अर्थव्यवस्था में मैनुफैक्चरिंग का हिस्सा 1950 में 29.3 प्रतिशत से घटते-घटते 2005 में केवल 12 प्रतिशत रह गया। इसके मुकाबले वित्तीय सेवाओं का हिस्सा 1950 में 10.9 प्रतिशत से बढ़कर 2005 में 20.4 प्रतिशत हो गया। जहां 1950 में मैनुफैक्चरिंग वित्तीय कारोबार का लगभग तीन गुना थी वहीं वह 2005 में घटकर वित्तीय कारोबार की लगभग आधी रह गई। कितना विशाल उत्थान और पतन है! दुनिया की सबसे विशाल अर्थव्यवस्था में वास्तविक मालों के उत्पादन का हिस्सा इतना गिर गया और वित्तीय लेन-देन का हिस्सा इतना बढ़ गया! परजीवीपन की इससे ज्यादा स्पष्ट अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है?

वित्तीय कारोबार के इस उत्थान को इस क्षेत्र द्वारा हासिल मुनाफे ने भी दिखाया। 1950 के दशक में मैनुफैक्चरिंग क्षेत्र द्वारा हासिल किया जाने वाला मुनाफा कुल मुनाफे के 50 प्रतिशत से ज्यादा था। इसी काल में वित्तीय क्षेत्र का मुनाफा कुल मुनाफे कुल मुनाफे का करीब 10 प्रतिशत से भी नीचे चला गया जबकि वित्तीय क्षेत्र का मुनाफा 40 प्रतिशत से ऊपर पहुंच गया। इस तरह दोनों क्षेत्रों द्वारा हासिल किये जा रहे मुनाफे के मामले में भी वही उत्थान और पतन देखने को मिला।

बात केवल इतनी ही नहीं है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था में वित्तीय कारोबार का हिस्सा बढ़ता गया है। बात इससे भी आगे यह है कि यह स्वयं वित्तीय क्षेत्र में

परिवर्तन के साथ हुआ है। वास्तव में इस परिवर्तन के बिना यह हो भी नहीं सकता था। नीचे की तालिका इसे दिखाती है:

B

वित्तीय क्षेत्र की बनावट (वित्तीय परिसम्पत्तियों का हिस्सा-प्रतिशत में)

	1956	1966	1976	1986	1996	2006
जमाकर्ता संस्थान	57.2	54.6	56.9	42.6	47.2	23.8
बीमा कंपनियां	21.1	16.4	11.7	9.3	8.7	6.3
पेंशन फण्ड	12.2	16.5	19.3	23.1	25.6	19.3
म्युचुअल फण्ड	2.7	4.0	2.2	7.5	15.1	18.3
गैर बैंकिंग ऋण दाता	4.3	4.9	4.3	4.3	3.4	3.6
सरकार प्रायोजित निजी संस्थान	1.4	2.4	5.1	9.8	12.1	12.8
प्रतिभूति पर आधारित प्रतिभूति जारी करने वाले	–	–	–	0.8	3.5	6.8
प्रतिभूति दलाल	1.1	1.1	1.3	1.9	2.8	5.2
अन्य	–	0.1	0.2	1.6	1.8	4.6

(स्रोत – वही, पृष्ठ–109)

इस तालिका से पता चलता है कि जहां 1956 में सामान्य बैंकों और बीमा कंपनियों का हिस्सा कुल कारोबार में 78.3 प्रतिशत यानी तीन-चौथाई से ज्यादा था वहीं वह 2006 तक घटकर 30.1 प्रतिशत यानी एक तिहाई से भी कम रह गया। इनके मुकाबले प्रतिभूतियों का कारोबार खूब फला-फूला और साथ ही म्युचुअल फण्ड का भी। इनका सीधा सम्बंध वित्तीय सट्टेबाजी से है। इस तरह देखा जाय तो वित्तीय क्षेत्र का यह सारा प्रसार इस क्षेत्र में सट्टेबाजी की वजह से है। और यही सारे मामले का मर्म है। स्थिति वहां पहुंच गई जहां व्यावसायिक बैंक और बीमा कंपनियां भी नये-नये तरीकों से सट्टा बाजार में उतर पड़ी।

वित्तीय कारोबार में असीम प्रसार, वित्तीय क्षेत्र की बनावट में परिवर्तन के साथ-साथ एक और चीज हुई। वह है अमेरिकी अर्थव्यवस्था में कर्ज का अभूतपूर्व विस्तार। इस विस्तार को नीचे की तालिका प्रदर्शित करती है।

तालिका-4

घरेलू ऋण और सकल घरेलू उत्पाद (हजार अरब डालर में)

	सकल घरेलू उत्पाद	कुल ऋण	जनता द्वारा ऋण	वित्तीय कंपनियों द्वारा ऋण	गैर वित्तीय व्यवसाय द्वारा ऋण	सरकारी ऋण
1970	1.0	1.5	0.5	0.1	0.5	0.4
1980	2.7	4.5	1.4	0.6	1.5	1.1
1990	5.8	13.5	3.6	2.6	3.7	3.5
2000	9.8	26.3	7.0	8.1	6.6	4.6
2007	13.8	47.7	13.8	16.0	10.6	7.3

यह तालिका दिखाती है कि जहां 1970 में कुल ऋण सकल घरेलू उत्पाद का डेढ़ गुना था वहीं वह 2007 में तीन गुने से भी ज्यादा हो गया। इसमें परिवर्तन मूलतः 1980 के बाद आया। वस्तुतः अमेरिका में कुल ऋण 1940 के दशक के मध्य से 1980 के दशक के मध्य तक लगभग स्थिर रहा था। उसके बाद वह तेज गति से बढ़ना शुरू किया और 2006 तक सकल घरेलू उत्पाद के 335 प्रतिशत तक जा पहुंचा। इसमें भी निरपेक्ष और सापेक्ष तौर पर सबसे ज्यादा वृद्धि वित्तीय कंपनियों द्वारा ऋणों की रही। जहां उनके द्वारा ऋण 1970 में सकल घरेलू उत्पाद का महज 10 प्रतिशत था वहीं 2007 में वह 110 प्रतिशत पहुंच गया।

तालिका दो को ध्यान से देखने से पता चलता है कि मैनुफैक्चरिंग में तेज गिरावट और वित्तीय क्षेत्र का तेज प्रसार 1970 के बाद ही होता है। इसी तरह तालिका तीन से पता चलता है कि सामान्य बैंकों की स्थिति में ह्रास तेजगति से 1970 के दशक के बाद ही होता है। इस तरह इन सबका आपस में सम्बंध हैं। ये सभी 1970 के दशक या उसके बाद की परिघटनाएं हैं। और ठीक यही समय निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण का, साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का समय है। अर्थव्यवस्था में मैनुफैक्चरिंग के हिस्से में तीव्र गिरावट और वित्तीय कारोबार के क्षेत्र में वृद्धि, स्वयं वित्तीय क्षेत्र में गैर बैंकिंग व गैर बीमा क्षेत्र में तेज वृद्धि जो सारे वित्तीय सट्टेबाजी से जुड़े हुए हैं तथा समूची अर्थव्यवस्था में ऋण की तेज वृद्धि, खासकर वित्तीय कंपनियों द्वारा। यही साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के दौर में अमेरिकी अर्थव्यवस्था की मूलभूत विशेषता है।

तालिका-4 को ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि 1970 और 2007 के बीच कुल ऋण में संकट घरेलू उत्पाद के अनुपात में करीब 185 प्रतिशत की वृद्धि हुई-यह सकल घरेलू उत्पाद के 150 प्रतिशत से करीब 335 प्रतिशत तक पहुंच गया। इस 185 प्रतिशत की वृद्धि में जनता पर ऋण का योगदान करीब 50 प्रतिशत है क्योंकि यह इस काल में सकल घरेलू उत्पाद के 50 प्रतिशत से 100 प्रतिशत तक पहुंच गया। लेकिन इस बीच वित्तीय कंपनियों को योगदान 100 प्रतिशत रहा क्योंकि उनका ऋण सकल घरेलू उत्पाद के 10 प्रतिशत से 110 प्रतिशत पहुंच गया। इस तरह इन दोनों ने मिलकर 185 प्रतिशत में से 150 प्रतिशत वृद्धि का योगदान किया। यह देखते हुए कि आम जनता को दिये गये नये ऋणों में से भारी हिस्से का संबंध वित्तीय सट्टेबाजी से है। यह सहज सा निष्कर्ष निकलता है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था में ऋण की यह बढ़ोत्तरी पूर्णतया वित्तीय सट्टेबाजी से जुड़ी हुई है। वित्तीय सट्टेबाज कंपनियों ने ऋण लिया और फिर वित्तीय बाजार में सट्टेबाजी की। इसी को वैधानिक करते हुए सरकार ने यह प्रावधान बना दिया कि सामान्य बैंक अपनी पूंजी के 10 गुने तक और अन्य वित्तीय सट्टेबाज संस्थान अपनी पूंजी के 40 गुने तक ऋण ले सकते हैं।

जैसा कि तालिका तीन दिखाती है 1980 के दशक से नये वित्तीय संस्थानों की प्रधानता होने लगती है और पुराने संस्थान यानी बैंक व बीमा कंपनियां पीछे जाने लगते हैं। बीमा कंपनियों की स्थिति में ह्रास पहले ही होने लगा था क्योंकि पेंशन

फण्ड उनके ग्राहकों को आकर्षित करने लगे थे। ये पेंशन फण्ड शेयर बाजार में पैसा लगाकर ज्यादा बेहतर आय देने का लालच देते थे। लेकिन असली परिवर्तन उन नये वित्तीय संस्थानों के उदय और विकास में हुआ जो पूर्णतया वित्तीय सट्टेबाजी को ही समर्पित थे। म्युचुअल फण्ड, सरकार समर्थित आवास गिरवी वाली कंपनियां, परिसम्पत्तियों पर प्रतिभूतियां जारी करने वाले, इन प्रतिभूतियों का कारोबार करने वाले, कंपनियों की खरीद-बेच करने वाले इत्यादि। 1956 में जहां इनका हिस्सा कुल वित्तीय कारोबार में महज 5.2 प्रतिशत था वहीं 2006 में वह 47.7 प्रतिशत तक जा पहुंचा। यहां तक कि 1976 में भी इनका हिस्सा महज 9.2 प्रतिशत ही था।

इनके विकास के साथ वह शुरू हुआ जिसे आज 'शैडो बैंकिंग' कहते हैं। उपरोक्त के अलावा तमाम तरह के सट्टेबाजी करने वाले संस्थान पैदा हो गये हैं जैसे हेज फण्ड, इक्विटी फण्ड इत्यादि। सामान्य व्यावसायिक बैंकों ने इस सट्टेबाजी में पूंजी लगाकर मुनाफा कमाने के लिए 'स्पेशल परपज व्हिकल' तथा 'ऑफ बैलेंस शीट' का तरीका निकाल लिया। 1990 के दशक में बैंकों के नियमों में परिवर्तन ने इनमें उनकी खूब मदद की। करों की चोरी के लिए 'आफ शोर बैंकिंग' का पूरा ताना-बाना खड़ा हुआ।

इन सबके चलते जब 2007 में वर्तमान संकट शुरू हुआ तो अमेरिका के वित्तीय क्षेत्र में वस्तुतः इसी 'शैडो बैंकिंग' की प्रधानता थी, उन संस्थानों की जो सामान्य वित्तीय कानूनों की सीमा से परे थे। इसीलिए कुछ लोगों ने यह कहना शुरू किया कि संकट का असली कारण वित्तीय कंपनियों का बहुत कम नियमन था और इसलिए भविष्य के संकट से बचने के लिए जरूरी है कि इन्हें नियमन के दायरे में लाया जाय। साम्राज्यवादी-पूंजीवादी हलकों में वैश्विक अर्थव्यवस्था में असंतुलन के बरक्स यह दूसरी राय थी।

इन सट्टेबाज वित्तीय संस्थानों का उदय और प्राधान्य सट्टेबाजी के भांति-भांति के औजारों के आविष्कार के साथ हुआ है। 1972 में विदेशी मुद्रा में फ्यूचर्स से लेकर 1992 में डिफरेंशियल स्वाप्स तक बीसियों सट्टेबाजी के औजार इजाद हुए। जैसे सट्टेबाजी का कारोबार बढ़ता गया वैसे-वैसे सट्टेबाजी के औजार भी बढ़ते गये।

संयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थव्यवस्था और वित्तीय कारोबार में यह परिवर्तन महज उस चीज का नमूना है जो इस या उस हद तक आज सभी साम्राज्यवादी देशों की विशेषता है। यदि यह केवल संयुक्त राज्य अमेरिका की अपनी विशेषता होती तो वर्तमान संकट में यूरोपीय और जापानी साम्राज्यवादी उसी तरह नहीं प्रभावित हुए होते जैसे अमेरिकी साम्राज्यवादी।

उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी की शुरुआत में एकाधिकारी पूंजी के उदय के साथ वित्त पूंजी का आविर्भाव हुआ। वित्त पूंजी औद्योगिक पूंजी और बैंकिंग पूंजी के सम्मिलन से पैदा हुई थी जिसमें प्रधानता बैंकिंग पूंजी की थी। इसके साथ ही मालों के निर्यात के बदले पूंजी के निर्यात ने प्रमुखता ग्रहण कर ली।

आज इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में वित्त पूंजी बहुत विशाल हो गई है, उसका ताना-बाना बहुत शक्तिशाली हो गया है और उसका सट्टेबाज चरित्र बहुत बढ़ गया है।

साम्राज्यवाद और वित्त पूंजी की ही अतीत की करतूतों के चलते दुनिया का एक बड़ा हिस्सा एकदम तबाही की स्थिति में है। वहां पूंजी निवेश की संभावना अत्यंत सीमित है। दूसरी ओर स्वयं साम्राज्यवादी देशों में एक लम्बे समय से लगभग ठहराव की स्थिति है। पहले से लगे हुए संयंत्र क्षमता से कम पर उत्पादन कर रहे हैं और नये निवेश की गुंजाइश बहुत कम है। उदारीकरण के दौर में मजदूर वर्ग की मजदूरी में कटौती ने पूंजी निवेश की इस समस्या को और बढ़ाया है। ऐसे में वित्त पूंजी के उत्पादन-वितरण में लगने की गुंजाइश अब सीमित है।

दूसरी ओर उदारीकरण के तीन-चार दशकों में साम्राज्यवादी पूंजी ने मजदूर वर्ग की मजदूरी को गिराकर, अन्य मेहनतकश वर्गों की आय में कटौती कर और दुनिया भर में छोटी सम्पत्ति वालों का सम्पत्तिहरण कर बेहिसाब मुनाफा कमाया है और संचय किया है। ऐसे में इस संचित पूंजी के लिए निवेश की समस्या विकराल होती गई है। उत्पादन-वितरण में निवेश की सीमित संभावनाओं की स्थिति में वित्त पूंजी ने अधिकाधिक सट्टेबाजी की ओर रुख किया है।

सट्टेबाजी की और वित्तीय कारोबार से मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति वित्त पूंजी में हमेशा से रही है। यह पैसे से पैसा बनाने का वह रास्ता है जो पूंजीपति वर्ग की चिर आकांक्षा है। लेकिन अन्य क्षेत्रों में निवेश की संभावना के सीमित होते जाने की अवस्था में यह प्रवृत्ति और बढ़ती जाती है। आज यह अति विशाल स्तर पर जा पहुंची है।

बात यह नहीं है कि एकाधिकारी पूंजीवाद किसी नये चरण में, वित्तीय पूंजी के चरण में जा पहुंचा है। यह स्पष्ट है कि पूंजीवाद में सारे मुनाफे का स्रोत वास्तविक उत्पादन है जैसे किसी भी व्यवस्था में अधिशेष उत्पादन में ही पैदा हो सकता है। वास्तविक उत्पादन से अलग व्यापार या वित्तीय लेन-देन अपने-आप कोई मुनाफा नहीं पैदा कर सकता। इस तरह वित्तीय कारोबार अंततः वास्तविक उत्पादन पर ही आधारित होता है। ऐसे में इसमें पूर्णतः स्वतंत्र किसी वित्तीय पूंजी और उसकी प्रधानता की बात नहीं की जा सकती। यह तभी संभव है जब वित्तीय कारोबार स्वयं मुनाफा पैदा कर दे जैसा कि आज साम्राज्यवादी व्यवस्था के चाटुकार अर्थशास्त्री मानते हैं। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। वित्तीय कारोबार वास्तविक उत्पादन में पैदा हुए बेशी मूल्य से ही एक हिस्सा बंटा सकता है,वह स्वयं बेशी मूल्य पैदा नहीं कर सकता।

लेकिन इसके बावजूद, उत्पादन-वितरण की वास्तविक अर्थव्यवस्था पर अंततः आधारित होने के बावजूद वित्त पूंजी का वित्तीय कारोबार एक हद तक स्वतंत्र गति हासिल कर सकता है और अपनी बारी में वास्तविक उत्पादन वितरण को गहरे से प्रभावित कर सकता है। एकाधिकारी पूंजीवाद से पहले के जमाने में जब वित्तपूंजी अभी पैदा नहीं हुई थी तथा पूंजी का आकार छोटा था तब भी समय-समय पर

वित्तीय कारोबार भीमकाय रूप धारण कर लिया करता था, खासकर तेजी के चरम पर। समय-समय पर सट्टेबाजी बड़े स्तर तक पहुंच जाती थी। लेकिन तब भी वह सब सीमित स्तर पर था। तब अधिकांश दुनिया गैर पूंजीवादी थी और पूंजीवादी देशों में भी भारी आबादी वित्तीय लेन-देन से सीमित मात्रा में ही जुड़ी हुई।

लेकिन एकाधिकारी पूंजीवाद में, वित्त पूंजी के उदय के साथ यह सब बदल गया। और अब इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में तो इस सब ने भंयकर रूप ग्रहण कर लिया है।

आज वित्तीय कारोबार और सट्टेबाजी का विशाल स्तर केवल तेजी के चरण पर ही नहीं दीख रहा है। अब यह एक तरह से स्थाई हो गया है। मंदी और संकट के समय तो इसमें बस केवल कुछ गिरावट होती है, अन्यथा वह जस का तस जारी रहता है। जब वित्त का एक बड़ा हिस्सा केवल वित्तीय कारोबार में ही लगा हुआ हो तो यह होगा ही। संकट के समय यह कुछ कम हो जायेगा लेकिन फिर शुरू हो जायेगा। वर्तमान भीषण संकट से उबरने की केवल उम्मीदें ही अभी की जा रही हैं लेकिन शेयर बाजार पहले ही कुलांचे भरने लगे हैं और भीषण रूप में डांवाडोल हो चुके सट्टेबाज वित्तीय संस्थान फिर विशाल मुनाफा दिखाने लगे हैं।

वित्त पूंजी के एक बड़े हिस्से का वित्तीय कारोबार और सट्टेबाजी में लगाना ही महत्वपूर्ण विशेषता नहीं है। इसके साथ यह भी हुआ है कि वित्त पूंजी ने सारी दुनिया के वित्तीय बाजार को एक दूसरे में पिरो दिया है। दूरसंचार के साधनों के विकास ने इसके लिए तकनीकी आधार प्रदान किया है तो साम्राज्यवादी वैश्वीकरण ने आर्थिक-राजनीतिक आधार। निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण के पूरे दौर में वित्त पूंजी के मुक्त आवागमन के रास्ते के सारे अवरोध समाप्त किये गये। मुद्रा की पूर्ण परिवर्तनीयता से लेकर विदेशी पूंजी निवेश को पूरी छूट इसके लिए जरूरी थे और इसे हासिल किया गया।

इसकी शुरुआत 1970 के दशक की शुरुआत में ब्रेटन वुड्स व्यवस्था के विध्वंस से हुयी थी। 1944 में ब्रेटन वुड्स व्यवस्था का गठन विश्व वित्तीय व्यवस्था के अराजक चरित्र को किसी हद तक नियंत्रित करने के लिए किया गया था। इसके पीछे 1929 की महामंदी की विभीषिका की पृष्ठभूमि थी। ब्रेटन वुड्स के तहत पूंजी के संचलन पर देश के भीतर और बाहर कुछ प्रतिबंध लगाये गये। वित्तीय कारोबार पर अंकुश लगाया गया।

लेकिन 1970 के दशक में यह व्यवस्था ध्वस्त हो गयी। वित्तपूंजी के आगे प्रसार के लिये यह कारगर नहीं रह गयी थी। अब इसे त्याग दिया गया और इसके बदले वित्त पूंजी के अनियंत्रित मुक्त प्रवाह की ओर बढ़ा गया। इसके बिना दुनिया के पैमाने पर विशाल वित्तीय कारोबार संभव भी नहीं था।

आज यह बात नहीं है कि सरकारें वित्त पूंजी के मुक्त आवागमन के सामने असहाय हैं। बात इसकी ठीक उलटी है। चूंकि सरकारों, खासकर साम्राज्यवादी सरकारों ने वित्त पूंजी के मुक्त प्रवाह की व्यवस्था की है इसलिए यह मुक्त प्रवाह

सरकारों को बेबस कर रहा है। पिछड़े देशों के पूंजी प्रवाह पर नियंत्रण तक ने दिखाया है कि वित्त पूंजी के प्रवाह द्वारा ढाये जा रहे विध्वंस पर अंकुश लगाया जाना संभव है। भारत और चीन दोनों द्वारा पूंजी के प्रवाह पर किसी हद तक नियंत्रण ने उन्हें 1997-98 के दक्षिण-पूर्व के संकट और वर्तमान संकट में बचाया। दोनों ही बार इनकी वित्तीय व्यवस्था हिचकोले खाने के बावजूद धराशाई नहीं हुयी।

वित्त पूंजी के इस मुक्त प्रवाह को नीचे की तालिका से समझा जा सकता है :

तालिका -5
सीमा के पार प्रतिभूतियों का आदान-प्रदान
(सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत)

देश	1975	1980	1985	1990	1995	1998
इटली	1	1	4	27	253	640
फ्रांस	n a	5	21	54	187	415
जर्मनी	5	7	33	57	172	334
कनाडा	3	9	27	65	187	331
यू.एस.ए.	4	9	35	89	135	230
जापान	2	8	62	119	65	91

(स्रोत: इकनॉमिस्ट गाइड टू फाइनेन्शियल मार्केट्स, 2006, Page-5)

उपरोक्त तालिका में यदि 1990 के दशक में जापान में कुछ कम वृद्धि दिखती है तो केवल इसी कारण कि इस दशक में जापानी बैंकों और वित्तीय संस्थानों की हालत बहुत खराब रही। अन्यथा तो उसके पहले के काल में जापान की वृद्धि सबसे ज्यादा है

सीमापार प्रतिभूतियों के कारोबार में यह वृद्धि तेज गति से 1980 के बाद शुरू होती है और 1990 के दशक में आसमान छूने लगती है। लेकिन उसके बाद वह कम नहीं होती बल्कि वर्तमान दशक में तो और भी ऊंचे स्तर पर जा पहुंचती है।

प्रतिभूतियों का यह वैश्विक कारोबार ऋणों की लेन-देन और सट्टेबाजी से संबंधित है। जैसा कि हम देख चुके हैं, स्वयं ऋणों की लेन-देन भी सट्टेबाजी से संबंधित है। इस तरह प्रतिभूतियों का यह तीव्र गति से बढ़ता कारोबार वस्तुत: तीव्र गति से बढ़ती सट्टेबाजी को दिखाता है।

वैश्विक पैमाने पर वित्तपूंजी के मुक्त प्रवाह ने समूचे विश्व वित्तीय बाजार के गहरे अंतर्गुंफन को जन्म दिया है। साम्राज्यवादी वित्तीय संस्थाओं द्वारा एक दूसरे

में तथा पिछड़े देशों की वित्तीय संस्थानों में हिस्सेदारी इसका एक पहलू है। इसका दूसरा पहलू यह है कि छोटी अवधि के ऋणों की प्रधानता और सट्टेबाजी के लिए भांति-भांति की परिसंपत्तियों की खरीद-बेच ने वित्तीय संस्थानों को बहुत बुरी तरह से एक दूसरे में गूंथ दिया है। वित्तीय संस्थानों में सबसे सुरक्षित व्यावसायिक बैंकों से इसे समझा जा सकता है।

पहले व्यावसायिक बैंक जमाकर्ता से धन जमा करते थे और उसे ग्राहकों को उधार देते थे जिनके बारे में वे आश्वस्त होते थे। उनके द्वारा उधार देने की सीमा तय थी, कुल जमा का निश्चित हिस्सा। स्वयं बैंक कम मात्रा में कर्ज लेते थे, वह भी अक्सर सरकार से। बैंक सुरक्षित थे और उनका कारोबार ऊबाऊ।

अब स्थिति यह है कि बैंक अपनी पूंजी के कई गुना तक उधार ले सकते हैं। वे इन्हें ऐसे लोगों को उधार देते हैं जो मूलत: सट्टेबाजी में लगे हुए हैं। गिरवी आधारित परिसम्पत्तियों का हिस्सा अमेरिकी बैंकों में 2004 में 60 प्रतिशत तक जा पहुंचा। 1950 में यह महज 10-12 प्रतिशत था। बैंक न केवल सट्टेबाज संस्थानों के लिए छोटी अवधि के ऋण जारी करते हैं (सट्टेबाजी के औजारों को अपने पास धरोहर रख) बल्कि स्वयं छोटी अवधि के ऋण लेते हैं। वे बैलेंस शीट के बाहर विशेष कंपनियां खड़ी करके सट्टेबाजी के औजार बनाते और बेचते हैं। वे खुद भी इनमें सट्टेबाजी करते हैं। अमेरिका में 2005 से 2007 के केवल दो सालों के बीच कॉमर्शियल पेपर 850 अरब डॉलर से 1175 अरब डॉलर तक जा पहुंचे।

इसका परिणाम होता है कि जब वित्तीय बाजार में हलचल मचती है तो परिसम्पत्तियों के दाम तेजी से गिरते हैं और बैंकों के सामने खुद के दिवालिए होने का खतरा पैदा हो जाता है। तरलता का संकट बहुत तेजी से खड़े रहने के संकट में रूपान्तरित हो जाता है। इसी कारण यह होता है कि आवास गिरवी की परिसम्पत्तियों के दाम गिरने से अमेरिका-यूरोप के सारे नामचीन बैंक लड़खड़ाने लगते हैं।

समूचे दुनिया के वित्तीय बाजार के इस तरह गुंथ जाने के कारण ही यह हुआ है कि किसी एक महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थान का संकट समूची दुनिया के वित्तीय व्यवस्था के लिए संकट खड़ा कर देता है। 1998 में अमेरिका में लॉंग टर्म कैपिटल मैनेजमैन्ट के संकट से लेकर वर्तमान संकट में भी यह बहुत स्पष्ट तरीके से अभिव्यक्त हुआ है। जहां इस अंतर्गुंफन ने वित्त पूंजी के लिए मुनाफा कमाने के कई रास्ते प्रदान किये हैं वहीं इसने इसके लिए गंभीर खतरा भी पैदा कर दिया है।

वित्त पूंजी एक है और वित्तीय बाजार भी। वित्त पूंजी का एक हिस्सा सट्टेबाजी में रत है तो दूसरा हिस्सा उत्पादन-वितरण में। वित्त पूंजी लगातार इस क्षेत्र से उस क्षेत्र में आ-जा रही है। वही बैंक उत्पादन-वितरण के लिए कर्ज दे रहे हैं और सट्टेबाजी के लिए भी। उसी वित्तीय बाजार से उत्पादक पूंजी भी उधार ले रही है और सट्टेबाज भी। इसीलिए वित्त बाजार के संकट का असर तुरंत ही उत्पादन और वितरण पर भी पड़ता है। वित्तीय बाजार के ठप हो जाने से उत्पादक और वितरक कंपनियां भी दिवालिया होने लगती हैं। यदि वर्तमान संकट में बियर स्टर्न, लेहमैन

ब्रदर्स, मेरिल लिंच, वाचोविया और नॉर्दन रॉक धराशाई हुए तो जनरल मोटर्स और क्राइसलर भी। यह देखते हुए कि उत्पादन-वितरण कंपनियों ने भी छोटी अवधि के ऋणों पर निर्भर रहना शुरू किया है, यह उनके संकट को और त्वरित कर देता है।

वित्तीय बाजार, उसकी सट्टेबाजी और उत्पादन तथा वितरण एक दूसरे रूप में भी आपस में अंतर्गुंफित हैं। 1990 के दशक के उत्तरार्ध की तेजी और फिर 2000 का संकट दूर संचार कंपनियों, खासकर इंटरनेट से संबंधित कंपनियों से जुड़ा हुआ था। लेकिन इस बार तो यह और भी बहुमुखी जुड़ाव के रूप में प्रकट हुआ।

आम वित्तीय कारोबार और सट्टेबाजी के प्रसार के साथ-साथ वर्तमान संकट अमेरिका और कई देशों में आवास और जमीनों के व्यवसाय में उछाल से संबंधित है। इनसे समूचा निर्माण उद्योग जुड़ा हुआ है। निर्माण उद्योग अपने साथ सीमेंट, इस्पात तथा अन्य उद्योगों को भी समेटता है। अमेरिका में निर्माण उद्योग उन उद्योगों में था जिसमें प्रगति हो रही थी। इतना ही नहीं, आवास को बार-बार गिरवी रखने की सुविधा ने उसे जन्म दिया जो 'होम इक्विटि' कहा जाता है यानी मकान को फिर से गिरवी रखकर उधार लेना और इस उधार को उपभोग की अन्य चीजों पर खर्च करना। अमेरिका मे 2003 से जो तेजी रही उसमे इस 'होम इक्विटी' का बड़ा हाथ था।

इस तरह जहां आवास के व्यवसाय ने 'सब प्राइम' उधार के जरिये सट्टेबाजी में उछाल पैदा की वहीं उसने वास्तविक उत्पादन और वितरण में उछाल पैदा की। आवास व्यवसाय में उछाल के बिना 2003 के बाद की तेजी नहीं आती। तब भी अमेरिकी सरकार की नीति भी यही थी कि आवास के क्षेत्र में उछाल पैदा कर 2001-02 की मंदी से बाहर निकला जाय।

वास्तव में 2007 के संकट की शुरुआत इसी आवास व्यवसाय में गिरावट से हुयी। जिस व्यवसाय ने 2003 के बाद की तेजी और सट्टेबाजी में तीव्र उछाल को जन्म दिया था उसी ने उसे जमीन पर भी पटका। 2006 की शुरुआत से आवास व्यवसाय में गिरावट आने लगी, दाम गिरने लगे और 2007 की शुरुआत आते-आते इसने गति पकड़ ली। इसी का परिणाम यह हुआ कि 2007 के उत्तरार्ध में वित्तीय व्यवस्था चरमराने लगी और समूची अर्थव्यवस्था मंदी की तरफ जाने लगी।

उत्पादन-वितरण तथा वित्तीय बाजार और सट्टेबाजी में यह संबंध एक बार फिर दिखाता है कि ऊंची उड़ान भरने तथा किसी हद तक स्वायत्त गति पकड़ने के बावजूद वित्तीय बाजार और सट्टेबाजी उत्पादन-वितरण से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं हो सकती। उसे अंततः उत्पादन-वितरण की गति से निर्धारित होना पड़ता है।

वित्त पूंजी की यह संरचना 'अमेरिकी-ब्रिटिश' मॉडल रही है और इससे सबसे ज्यादा फायदा भी इन्हें ही हुआ है। लंदन और न्यूयॉर्क सबसे बड़े वित्तीय केन्द्र रहे हैं। जापानी साम्राज्यवादी भी इससे फायदा उठा सकते थे लेकिन 1980 के दशक की ऊंची उड़ान के बाद वहां के वित्तीय संस्थान 1990 से ही जिस संकट में फंसे हुए हैं, उससे उबर नहीं पाये हैं। ऐसे में साम्राज्यवादी वैश्वीकरण से, वित्त पूंजी के

मुक्त प्रवाह से सबसे ज्यादा फायदा अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को हुआ है। बाकी साम्राज्यवादियों के मुकाबले 1990 के दशक से उनकी बढ़त में यह झलकता है। इसीलिए इस 'मॉडल' के प्रति यूरोपीय साम्राज्यवादियों की, खासकर फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों की खीझ और शिकायत भी है।

लेकिन वे भी मूलतः इसी पर चलते रहे हैं और इससे लाभ उठाया है। 'सब प्राइम' गिरवी आधारित परिसंपत्तियां अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने पैदा की लेकिन उसे खरीदा यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने भी। अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से ज्यादा कई कमजोर यूरोपीय देश संकट के शिकार हुए। यूरोप के कई भारी-भरकम बैंकों को सरकारों की बचाना पड़ा। मुद्रा बाजार में पैसा झोंकने और बैंकों में जमा पर गारंटी देने के लिए भी यूरोपीय सरकारों को आगे आना पड़ा।

इस रूप में यह सभी साम्राज्यवादियों का मॉडल था जिसे आगे बढ़ाया था अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने। सभी ने इससे फायदा उठाया था। लेकिन अब जबकि पापों का घड़ा फूट चुका है, तब यूरोपीय साम्राज्यवादी इससे अपने आप को अलग दिखाने का प्रयास कर रहे हैं।

IV
अर्थव्यवस्था में राज्य का हस्तक्षेप

साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के पूरे दौर में साम्राज्यवादियों ने शोर मचाया है कि राज्य का अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप समाप्त होना चाहिए। अर्थव्यवस्था को बाजार की अदृश्य शक्तियों के हवाले किया जाना चाहिए। अर्थव्यवस्था का राज्य में हस्तक्षेप बाजार को विकृत करता है और इस तरह यह उसकी कुशलता को बाधित करता है। यदि बाजार को मुक्त छोड़ दिया जाय तो समूची पूंजीवादी अर्थव्यवस्था सबसे अच्छी तरह से चलेगी। जो मजबूत और कुशल होंगे वे बाजार में टिकेंगे, बाकी ध्वस्त हो जायेंगे।

मजे की बात यह है कि फ्रेडरिक वान हएक, मिल्टन फ्रीडमैन तथा शिकागो स्कूल द्वारा प्रचारित यह सिद्धान्त, जिसे वाशिंगटन कन्सेसस के नाम से भी जाना जाता है, सबसे पहले चिली के सैनिक तानाशाह द्वारा चिली में लागू किया गया। खून का प्यासा पिनोखे चाहे जो कुछ हो, लेकिन उदार तो हरगिज नहीं था। लेकिन उसी ने सबसे पहले अपने यहां उदारीकरण की नीतियों को लागू किया। मिल्टन फ्रीडमैन का पहला शिष्य वही था।

न केवल चिली बल्कि समूची दुनिया के पैमाने पर सच्चाई यही है। साम्राज्यवादी देशों से लेकर पिछड़े पूंजीवादी देशों तक उदारीकरण की नीतियों को लागू करने का काम, बाजार की अदृश्य शक्तियों को मुक्त करने का काम स्वयं राज्य

ने किया। और उसने यह केवल अर्थव्यवस्था से, उत्पादन-वितरण और वित्त से अपना हाथ खींचकर नहीं किया। उसने बाकायदा हस्तक्षेप कर,इसके लिए नियम-कानून बनाकर और बनवाकर यह किया। इन नीतियों का विरोध करने वालों को उसने बलपूर्वक कुचला। पिनोखे के कत्लेआम और 17 सालों की सैनिक तानाशाही ने ही यह सुनिश्चित किया कि वहां 'बाजार की अदृश्य शक्तियां' काम करें। इंग्लैण्ड में थैचर द्वारा खनिकों की हड़ताल और अमेरिका में रीगन द्वारा वायु सेवा नियंत्रकों की हड़ताल का कुचला जाना इन नीतियों को लागू करने की दिशा में पहले कदम थे। राज्य ने 'बाजार की अदृश्य शक्तियों' के रास्ते में खड़े सारे प्रतिरोध को कुचल डाला। इसने यह भी सुनिश्चित किया कि यह प्रतिरोध भविष्य में खड़ा न हो।

साम्राज्यवादी देशों की सरकारों ने यह केवल अपने देशों में ही नहीं किया। उन्होंने तीसरी दुनिया के पिछड़े देशों में भी यही किया। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, गैट व विश्व व्यापार संगठन तथा अन्य दसियों तरीकों से इन देशों में 'बाजार की अदृश्य शक्तियों को उन्मुक्त किया।

यह ऊपरी तौर पर अजीबोगरीब लगता है लेकिन सच्चाई यही है कि आज राज्य ही 'बाजार को अदृश्य शक्तियों' का सबसे बड़ा संचालक है। राज्य ही इन शक्तियों की प्रधानता घोषित करता है। वह इसके लिए नियम कानून बनाता और बनवाता है तथा बाजार की शक्तियां वास्तव में कुछ स्वतंत्र करती हैं तो वह वहां पहुंच जाता है। ब्याज दरों और मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के नाम पर, 'इतने बड़े हैं कि उनका दिवालिया होना समूची अर्थव्यवस्था के लिए खतरा पैदा करेगा इसलिए उन्हें बचाना चाहिए' के नाम पर तथा स्वयं 'बाजार सही रूप में काम करे' के नाम पर हर समय राज्य उपस्थित रहता है और नियंत्रक के रूप में अपनी भूमिका अदा करता है। वास्तव में इससे भिन्न कुछ हो भी नहीं सकता। एकाधिकारी पूंजीवाद के विकास की इस अवस्था में पूंजीपति वर्ग को राज्य से तथा राज्य को अर्थव्यवस्था से अलग-थलग नहीं रखा जा सकता। विभिन्न साम्राज्यवादी देशों की अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप को नीचे की तालिका दिखाती है:

तालिका-6

कुल सरकारी खर्च

(सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत में)

देश	1913	1938	1950	1973	1999
फ्रांस	8.9	23.2	27.6	38.8	52.4
जर्मनी	17.7	42.4	30.4	42	47.6
ब्रिटेन	13.3	28.8	34.2	41.5	39.2
सं.रा.अमेरिका	8.0	19.8	21.4	31.1	30.1
जापान	14.2	30.3	19.8	22.9	38.1

स्रोत: (Angus Madison, World Economy, Academic Foundation, New Delhi, 2007, Page-641)

यह तालिका दिखाती है कि सभी महत्वपूर्ण साम्राज्यवादी देशों की अर्थव्यवस्था में राज्य का हस्तक्षेप 1950 के मुकाबले 1999 में काफी बढ़ा है। जर्मनी और जापान जैसे देशों में द्वितीय विश्व युद्ध की तैयारी के दौरान राज्य का हस्तक्षेप बहुत बढ़ गया था जो इनकी पराजय के बाद 1950 तक काफी कम हो गया। लेकिन 1999 में यह 1938 से भी आगे पहुंच गया था। यही नहीं उदारीकरण के समूचे दौर में भी संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में बहुत थोड़ी सी गिरावट आई जबकि अन्य देशों में इसमें बढ़ोत्तरी ही हुई। संकट के पिछले दो वर्षों में तो यह हस्तक्षेप और भी विशाल स्तर पर जा पहुंचा है। साम्राज्यवादी देशों में सरकारों का बजट घाटा ही सकल घरेलू उत्पाद के दस प्रतिशत से ऊपर चला गया है।

अर्थव्यवस्था में राज्य का दखल सेना और सुरक्षा बलों पर खर्च, सैन्य-औद्योगिक संस्थानों में दखल, राज्य मशीनरी पर खर्च, सब्सिडी पर खर्च, पूंजीपति वर्ग को सब्सिडी तथा सार्वजनिक उद्यमों के माध्यम से होता है। उदारीकरण के दौर में कटौती केवल जनता को दी जाने वाली राहतों में हुई है। जिस हद तक निजीकरण हुआ है उस हद तक राज्य का हस्तक्षेप प्रभावित हुआ है। लेकिन अन्य मदों में खर्च बढ़ा ही है। इस तरह कुल मिलाकर उदारीकरण के दौर में राज्य का अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप स्थिर रहा है या बढ़ा है।

इसे वर्तमान संकट में राज्य के व्यवहार से बखूबी समझा जा सकता है। जब वर्तमान संकट गहराया तो वित्तीय और गैर वित्तीय पूंजीवादी संस्थानों को बचाने के लिए सभी सरकारों ने अपने खजाने खोल दिये। इनके ऊपर हजारों अरब डॉलर लुटाये गये। लेकिन ठीक इसी समय बेरोजगार हो रहे मजदूर वर्ग के लिए राज्य ने कुछ भी नहीं किया। पूंजीवादी उद्यमों पर हजारों अरब डॉलर लुटाने वाली सरकारों के पास मजदूर वर्ग को भुखमरी से बचाने के लिए कुछ सौ अरब डॉलर भी नहीं थे। संयुक्त राष्ट् संघ के आकलन के अनुसार इस संकट के कारण दुनिया भर में करीब 20 करोड़ और लोग भुखमरी की रेखा के नीचे चले गये। उदारीकरण के समूचे दौर की इसी नीति को लोगों ने 'घाटा सार्वजनिक और मुनाफा निजी' का नाम दिया।

जैसा कि पहले कहा गया है साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के इस दौर में राज्य ने वित्त पूंजी के सारी दुनिया में मुक्त प्रवाह को सुनिश्चित किया। इस मुक्त प्रवाह में, 'बाजार की अदृश्य शक्तियों' की इस स्थिति में वित्त पूंजी आश्वस्त थी कि राज्य हमेशा उसकी सेवा में मुस्तैदी से तैयार खड़ा है। जरूरत पड़ने पर न केवल राज्य पूंजी के मुनाफे को सुनिश्चित करेगा बल्कि उसे बचायेगा भी। राज एकाधिकारी पूंजीवाद के इस जमाने में, राज्य और पूंजीपति वर्ग के एकाकार हो जाने के इस जमाने में इससे इतर कुछ हो भी नहीं सकता।

कुछ सुधारवादी लोग इस बात से परेशान हैं कि साम्राज्यवादी सरकारों ने बार-बार हस्तक्षेप कर जिस तरह से अपने यहां के वित्तीय संस्थानों को बचाया है और उन्हें अपने कुकर्मों की सजा नहीं भुगतने दी, उसने 'नैतिक खतरा' पैदा किया है। ये वित्तीय संस्थान और बेधड़क हो गये हैं तथा समूची व्यवस्था के लिए संकट

पैदा कर रहे हैं। इस नीति का खात्मा होना चाहिए और इन्हें दीवालिया हो जाने देकर बाकियों को सबक सिखाना चाहिए।

लेकिन इन सुधारवादियों के मुकाबले साम्राज्यवादी ज्यादा यर्थाथवादी जमीन पर हैं। अपने ही पावों पर कुल्हाड़ी नहीं मार सकते। और कुछ नहीं तो 1982 से अब तब के बार-बार के संकटों से साम्राज्यवादी जानते हैं कि साम्राज्यवादी वैश्वीकरण ने जिस तरह वित्त बाजार को आपस में गूंथ दिया है, उसमें कोई भी बड़ा संकट समूची व्यवस्था को खतरा पैदा कर सकता है। लेहमैन ब्रदर्स के दिवालिया हो जाने देने के बाद सितंबर 2008 में दुनिया के वित्तीय बाजार में जो भूचाल आया, उससे सभी साम्राज्यवादियों की रूहें कांप गईं। करीब एक पखवाड़े तक सभी की सांसें थमी रहीं। साम्राज्यवादी वित्तीय संस्थानों में सबसे ज्यादा कुकर्म करने वालों में एक ए आई जी था। लेकिन यदि इसे दिवालिया हो जाने दिया गया होता तो दुनिया का वित्तीय बाजार निश्चित तौर पर ध्वस्त हो जाता। इसीलिए इसे बचाने के लिए अमेरिकी सरकार ने 150 अरब डॉलर से भी ज्यादा खर्च किये।

पूंजी के संकेन्द्रण के इतने ऊंचे स्तर पर पहुंचने के बाद इसके अलावा कुछ हो भी नहीं सकता। राज्य को वित्त पूंजी के पक्ष में हस्तक्षेप करना ही होगा। राज एकाधिकार पूंजीवाद के जमाने का राज्य मजदूर वर्ग की केवल तभी सुनता है जब वह बड़े संघर्षों के जरिये उसे चुनौती दे रहा हो। अन्यथा तो वह अपनी पूंजी के हित में सब कुछ कर रहा होता है। वित्त पूंजी के हित में अर्थव्यवस्थाओं का संचालन तथा बाजार में हस्तक्षेप भी इसी का हिस्सा है।

राज्य से किसी और तरह की उम्मीद करना यह भ्रम पालना है कि राज्य एकाधिकारी पूंजीवाद के इतने ऊंचे स्तर पर राज्य पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग दोनों से स्वतंत्र व्यवहार करेगा। यह संभव नहीं है। आज राज्य पहले से कहीं ज्यादा पूंजीपति वर्ग के साथ घुलमिल गया है और उसी के हितों के अनुरूप काम करेगा। उसके पास मजदूर वर्ग को देने के लिए एक पैसा नहीं होगा जबकि पूंजीपति वर्ग पर लुटाने के लिए हजारों अरब डॉलर। यही नहीं, इसके लिए वह मजदूर वर्ग को और ज्यादा दबाएगा। इस संकट में पूंजीपति वर्ग को राहत देने के लिए सरकारों ने जो अपना बजट घाटा बढ़ाया है उसकी भरपाई वे मजदूर वर्ग से ही करेंगी।

अर्थव्यवस्था में राज्य के इतने ऊंचे स्तर का हस्तक्षेप वास्तव में उत्पादन और वितरण के बहुत ऊंचे समाजीकरण और केन्द्रीयकरण पूरे विश्व के पैमाने पर नियमन, नियंत्रण की मांग कर रहा है। लेकिन इसके बदले साम्राज्यवादी सरकारें वित्त पूंजी के मुक्त प्रवाह को बढ़ावा दे रही हैं। यह बहुत तीव्र संकटों को जन्म दे रहा है। 1982 से अब तक के सारे संकट इसी की अभिव्यक्ति रहे हैं। वर्तमान संकट इसकी सबसे घनीभूत अभिव्यक्ति है। वित्त पूंजी की सेवा में पूर्णतया समर्पित राज्य इन संकटों से उबरने के लिए हमेशा हर संभव प्रयास करता रहा है लेकिन वर्तमान संकट ने दिखाया कि इन प्रयासों की भी एक सीमा है।

वर्तमान संकट ने राष्ट्र-राज्य की ताकत और भूमिका को स्पष्ट तौर पर

रेखांकित कर दिया। कुछ लोगों की निगाह में सर्वशक्तिमान हो गई वित्त पूंजी को, जिसके सामने राष्ट्र-राज्य निस्सहाय थे, न तो बाजार की शक्तियों ने बचाया और न ही उसके 'रचनात्मक विध्वंस' की शक्ति ने। इसे राष्ट्र राज्य ने बचाया। केवल राष्ट्र-राज्य के अत्यंत विशाल हस्तक्षेप ने ही वित्त पूंजी के विध्वंस को रोका। लेकिन वित्त पूंजी और राष्ट्र-राज्य के बारे में इस तरह की द्वैधतावादी बहस राज एकाधिकार पूंजीवाद के मूलभूत चरित्र को ही आंखों से ओझल करना है जिसमें वित्त पूंजी और राज्य आपस में घुल-मिल जाते हैं।

साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के जमाने में राज्य की इस स्थिति को देखते हुए उसकी भूमिका में परिवर्तन की केवल तभी उम्मीद की जा सकती है जब समूची पूंजीवादी व्यवस्था गंभीर संकट में उलझ जाय या मजदूर वर्ग संगठित होकर बड़े संघर्षों में कूद पड़े। यह याद रखना होगा कि तथाकथित कल्याणकारी राज्य की नीतियों को प्रथम विश्वयुद्ध, रूसी सर्वहारा क्रांति, महामंदी, द्वितीय विश्व युद्ध और समाजवादी खेमे तथा साम्राज्यवादी देशों में बड़ी कम्युनिस्ट पार्टियों की मौजूदगी जैसे बड़े प्रेरक तत्व ही अस्तित्व में ला पाये थे। रूजवेल्ट के टूटे-फूटे 'न्यू डील' को कितने प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा उसकी अपनी अलग कहानी है।

V
आय का वितरण

पूंजीवाद के विकास के साथ पूंजीपति वर्ग के सापेक्ष मजदूर वर्ग की हालत लगातार खराब होती जाती है। यह पूंजीवाद का आम नियम है। लेकिन पूंजीवाद के किन्हीं खास दौर में यह आम नियम और भी तीखे ढंग से अभिव्यक्त होने लगता है। साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का वर्तमान दौर ऐसा ही है।

बढ़ती बेरोजगारी और समग्र आय में मजदूरी का घटता हिस्सा सभी साम्राज्यवादी देशों, यही नहीं तीसरी दुनिया के पिछड़े देशों में भी, साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के दौर की आम विशेषता है। 1970 के दशक की शुरुआत से पहले साम्राज्यवादी देशों में औपचारिक बेरोजगारी की दर 2 से 6 प्रतिशत थी। यह तीन दशक बाद विभिन्न देशों में 5 से 22 प्रतिशत पहुंच गई। वर्तमान संकट में तो यह हर देश में पांच से दस प्रतिशत तक और बढ़ी है।

यह स्थापित बात है कि बेरोजगारी के औपचारिक सरकारी आंकड़े बेरोजगारी की वास्तविक तस्वीर पेश नहीं करते। वास्तविक बेरोजगारी दो-तीन गुना ज्यादा हो सकती है। लेकिन तो भी सापेक्षिक तौर पर ये आंकड़े दिखाते हैं कि साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के समूचे काल में बेरोजगारी तेज गति से बढ़ती गई है। और यह सारी दुनिया में हुआ है।

लेकिन मजदूरों की छंटनी व पूंजी द्वारा बेशी श्रम का और ज्यादा बड़ा हिस्सा हासिल करने का, मुनाफा बढ़ाने का केवल एक तरीका है। दूसरा तरीका है, मजदूरों की मजदूरी में कटौती। इस पूरे दौर में मजदूरी में लगातार कटौती होती गयी है। यदि यह निरपेक्ष तौर पर नहीं हुई है तो सापेक्ष तौर पर जरूर हुई है। अमेरिका में 1950 व 1973 के बीच मजदूरों की उत्पादकता में सालाना 2.70 प्रतिशत की वृद्धि हुई तो मजदूरी में 2.1 प्रतिशत की। लेकिन 1974 व 1999 के बीच उत्पादकता में सालाना 1.62 प्रतिशत की वृद्धि हुई और मजदूरी में केवल 0.92 प्रतिशत की। इन सबसे समस्त आय में मजदूरी का हिस्सा लगातार गिरता गया है। अमेरिका में तनख्वाहें और मजदूरी 1970 में सकल घरेलू उत्पाद का 53 प्रतिशत से घटकर 2005 में केवल 46 प्रतिशत रह गईं। यह देखते हुए कि इसमें ऊंची तनख्वाहों वाले लोग भी शामिल हैं, मजदूरी के हिस्से में कमी की अंदाज लगाया जा सकता है।

मजदूरों की बेरोजगारी, उनकी आय में कमी तथा छोटी सम्पत्ति वालों के कंगालीकरण के चलते सभी देशों में आय व सम्पत्ति में असमानता बढ़ती गई है। कुछ पिछड़े पूंजीवादी देशों में तो यह सारी सीमाएं पार करने लगी है। साम्राज्यवादी देशों में भी मजदूरों और उच्च पदाधिकारियों के बीच असमानता में तीन-चार गुने की वृद्धि हुई है।

मजदूर वर्ग की मजदूरी में कटौती तथा छोटी सम्पत्ति वालों का कंगालीकरण स्वभावतः बेशी मूल्य को हासिल करने की समस्या को जन्म देगा। पूंजीपति वर्ग उत्पादन की प्रक्रिया में मजदूर से ज्यादा बेशी मूल्य निचोड़ने में कामयाब हो जायेगा लेकिन वह इसे हासिल करने में बाधाओं का सामना करेगा। पैदा हुए बेशी मूल्य को हासिल करने के लिए जरूरी है कि माल बिके। यदि माल नहीं बिकता है या अपने दाम से कम पर बिकता है तो पूंजीपति को बेशी मूल्य हासिल नहीं हो पायेगा। पूरे समाज के पैमाने पर ऐसा होने पर गम्भीर समस्या खड़ी होने लगेगी।

इसका एक परिणाम उत्पादन में ठहराव में अभिव्यक्त होगा। स्थापित संयंत्र अपनी क्षमता से कम उत्पादन करेंगे जबकि नयी क्षमताओं के विकास में निवेश कम होगा। अमेरिका में 1930 के दशक से अब तक हर दशक में सकल घरेलू उत्पाद में औसतन सालाना वृद्धि दर इस प्रकार रही है: 1.3, 5.9, 4.1, 4.4, 3.3, 3.1, 3.1 तथा 2.6 प्रतिशत। वहां औद्योगिक क्षमता के इस्तेमाल का प्रतिशत 1970 के दशक में 86 प्रतिशत से घटकर 2005 तक 78 प्रतिशत रह गया। इसी तरह निविल निजी निवेश भी 1970 के दशक में सकल घरेलू उत्पाद के 4.4 प्रतिशत से घटकर 2005 तक 2 प्रतिशत रह गया।

मजदूर वर्ग की गिरती आय की इस अवस्था में पूंजीपति वर्ग ने बेशी मूल्य को हासिल करने के लिए कर्जखोरी को बढ़ावा देना शुरू किया। धीमे-धीमे उपभोग में कर्जे की मात्रा बढ़ने लगी। भांति-भांति के उधार से मजदूर वर्ग को उपभोग के लिए प्रेरित किया जाने लगा। इसकी चरम परिणति 'होम इक्विटी' में हुई जब सट्टेबाजी के चलते आवास के चढ़ते हुए दामों से मजदूरों को फिर से मकान गिरवी

रखकर कर्ज लेने के लिए ललचाया गया।

इस सबका परिणाम हुआ मजदूर वर्ग का कर्ज की गंभीर समस्या में फंस जाना। नीचे की तालिका इसे दिखाती है:

तालिका -7
उपभोक्ता ऋण (संयुक्त राज्य अमेरिका)

वर्ष	उपभोक्ता ऋण (अरब डॉलर)	उपभोक्ता आय (अरब डॉलर)	ऋण/आय (प्रतिशत)
1975	736.3	1187.4	62.0
1980	1397.1	2009.0	69.5
1985	2272.5	3109.3	73.0
1990	3592.9	4285.8	83.8
1995	4858.1	5408.2	89.8
2000	6960.6	7194.0	96.8
2005	11496.6	9039.5	127.2

(स्रोत: The Great Financial Crisis, वही, P-29)

तालिका दिखाती है कि खर्च की जा सकने वाली आय के मुकाबले उपभोक्ताओं का ऋण लगातार बढ़ता गया है। वह 1975 के बाद के 30 सालों में दो गुना हो गया है। इसमें भी सबसे तेज वृद्धि 2000 से 2005 के दौर में रही है।

खर्च की जा सकने वाली आय से ज्यादा ऋण! फिर यह ऋण चुकता कैसे होगा? इसका केवल एक ही उत्तर है- और ज्यादा ऋण लेकर! इस तरह दुनिया भर को अपने ऋण जाल फंसाने वाले अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने स्वयं अपने देश में भी उपभोक्ताओं को ऋण जाल में फंसा लिया।

उपरोक्त तालिका में उपभोक्ताओं की सामान्य तस्वीर है। इन उपभोक्ताओं में मजदूर वर्ग के अलावा अन्य वर्ग के लोग भी होंगे। मजदूर वर्ग की वास्तविक हालत को समझने के लिए विभेदीकृत तस्वीर जरूरी है। नीचे की तालिका इसे दिखाती है:

तालिका-8

पारिवारिक आय के चालीस प्रतिशत से ज्यादा का ऋण भुगतान करने वाले परिवारों का प्रतिशत

आय प्रतिशत	1995	1998	2001	2004
< 20	27.5	29.9	29.3	27.0
20–39.9	18.0	18.3	16.6	18.6
40–59.9	9.9	15.8	12.3	13.7
80–89.9	4.7	3.5	3.5	2.4
90–100	2.3	2.8	2.0	1.8

(स्रोत: वही, P-32)

यह तालिका दिखाती है कि सबसे कम आय वाले 20 प्रतिशत परिवारों में से एक चौथाई से ज्यादा अपने खर्च की जाने वाली आय का चालीस प्रतिशत से ज्यादा ऋण भुगतान पर खर्च कर रहे थे। इसके मुकाबले सबसे ऊंची आय वाले दस प्रतिशत परिवारों में से ऐसे लोग 2 प्रतिशत के आस-पास ही थे।

इस तरह यह मजदूर वर्ग ही है जो उपभोक्ता कर्ज के बोझ से दबा जा रहा है। बेरोजगारी और गिरती मजदूरी की हालत में मजदूर वर्ग के पास इसके अलावा कोई रास्ता भी नहीं है। दूसरी ओर इफरात पूंजी के मालिक वित्तीय संस्थान उन्हें अपना शिकार बनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। जैसा कि सब प्राइम संकट के समय उजागर हुआ, मजदूर वर्ग को ऋण जाल में फंसाने के लिए वित्तीय सौदागरों ने हर तरह के छल-छद्म का इस्तेमाल किया। संकट आने पर इसी मजदूर वर्ग को सबसे ज्यादा मार खानी पड़ी। वह अपनी कई सालों की मेहनत की कमाई खोकर सड़क पर आ गया, उसके घर को उन्हीं सट्टेबाजों ने कब्जा लिया जिन्होंने उसे ललचाया था।

कर्ज लेकर उपभोग करने की संस्कृति और साम्राज्यवादी वैश्वीकरण में सीधा संबंध है। कर्ज लेकर उपभोग करना मजदूर वर्ग की इच्छा नहीं, उसकी मजबूरी है। वित्त पूंजी एक ओर मजदूर की मजदूरी घटा कर उसे इसके लिए मजबूर कर रही है तो दूसरी ओर उसे भांति-भांति तरीके से ललचा रही है। इस प्रक्रिया में मजदूर वर्ग तबाह हो रहा है।

साम्राज्यवादी देशों में मजदूर वर्ग की बढ़ती ऋणग्रस्तता मुद्रा तरलता या

आसान ऋण उपलब्धता का मामला नहीं है। यह मजदूर वर्ग की लगातार बदतर होती जाती स्थिति का परिणाम है। वित्त पूंजी पिछड़े पूंजीवादी देशों में भी ऋण पर आधारित उपभोक्ता संस्कृति को आक्रामक ढंग से प्रसारित कर रही है।

पिछड़े पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग और अन्य मेहनतकश वर्गों की और भी बदहाल होती स्थिति उन देशों में पूंजीवादी विकास को बुरी तरह प्रभावित करती है। वे लगातार अति संचय की समस्या से ग्रस्त हैं हालांकि वहां संचय का स्तर बहुत नीचा है। साम्राज्यवादी पूंजी की इन देशों में बढ़ती पैठ और ज्यादा विकृति को जन्म देती है।

VI
वैश्विक शक्ति संतुलन में परिवर्तन

कुछ घटनाएं लाक्षणिक होती हैं। कोपेनहेगन में दिसम्बर 2009 में जलवायु परिवर्तन पर शिखर बैठक में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा ने तीसरी दुनिया के पिछड़े पूंजीवादी देशों में से चार के साथ समझौता किया और फिर इसे बाकी देशों के सामने पेश किया। ये देश थे चीन, भारत, ब्राजील और दक्षिण आफ्रीका।

ये देश विकसित देश नहीं हैं। प्रति व्यक्ति उत्पादन में ये विकसित साम्राज्यवादी देशों के सामने कहीं नहीं ठहरते। इनके पास तकनीक भी पिछड़ी है। इसके बावजूद कुछ ऐसा हुआ है कि 193 देशों की बैठक में बराक ओबामा इनके साथ समझौता करते हैं।

जो हुआ है वह दर असल वैश्विक शक्ति संतुलन में परिवर्तन है। 1945 की तुलना में इस समय तक शक्ति संतुलन में जो परिवर्तन हुआ है वह कई तरह से अपने को अभिव्यक्त कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद की संरचना में परिवर्तन के लिए एक लम्बे समय से मांग उठ रही है। जापान, जर्मनी सहित भारत, ब्राजील और दक्षिण आफ्रीका जैसे देश इसमें अपने लिए स्थाई सदस्यता की मांग कर रहे हैं। इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक की संरचना में परिवर्तन की मांग की जा रही है। साम्राज्यवादियों के अपने क्लब G-8 में भारत-चीन जैसे कई देश घुसना चाहते हैं। इसी तरह विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों में परिवर्तन के लिए निरंतर संघर्ष चल रहा है। इन सबका एक ही सार है। बदलते शक्ति संतुलन के हिसाब से सबको नये सिरे से जगह दी जाय।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद जो पूंजीवादी दुनिया अस्तित्व में आई उसमें संयुक्त

राज्य अमेरिका न केवल शीर्ष पर था बल्कि वह बाकियों से बहुत आगे था। उसके प्रतिद्वन्द्वी जापान और जर्मनी पराजित और ध्वस्त पड़े हुए थे। हालांकि इंग्लैण्ड और फ्रांस विजेताओं में थे लेकिन वे भी क्षत-विक्षत थे। बाकी देश कहीं ठहरते नहीं थे। सोवियत संघ और समाजवादी खेमे की बात ही अलग थी।

ऐसे में विश्व पूंजीवादी दुनिया में अमेरिकी साम्राज्यवादियों का एकछत्र वर्चस्व लाजिमी था। जो ब्रेटन वुड्स व्यवस्था अस्तित्व में आई उसमें यह यथार्थ अभिव्यक्त हुआ। डॉलर अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा बनी। बाकी मुद्राएं इसके साथ बांधी गईं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक में अमेरिका को वीटो हासिल हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ में वह साम्राज्यवादियों का निर्विवाद नेता था। सोवियत संघ और समाजवादी खेमे से संघर्ष में सारे साम्राज्यवादी अमेरिकी साम्राज्यवादियों का नेतृत्व स्वीकार करते थे। गुलाम देश तो अभी आजाद होने ही शुरू हुए थे और उनकी कहीं गिनती नहीं थी।

आज की दुनिया इससे काफी बदल गई है। अमेरिका अभी भी सबसे शक्तिशाली देश है लेकिन उसकी ताकत पहले से बहुत घट गई है। ब्रेटन वुड्स व्यवस्था बहुत पहले ही समाप्त हो गई और हालांकि डॉलर अभी भी अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा है लेकिन उसकी स्थिति काफी कमजोर हो चुकी है। एक समय का उधार देने वाला अमेरिका इस समय सबसे बड़ा कर्जदार देश बन गया है। यूरोपीय देशों ने यूरोपीय संघ में शामिल होकर एक बड़ी ताकत हासिल कर ली है। सोवियत संघ के बिखरने के बाद रूस अब फिर खड़ा हो रहा है और अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रहा है। यही नहीं तीसरी दुनिया के कुछ बड़े और मजबूत देश उभर कर सामने आ रहे हैं और अपनी जोर आजमाइश कर रहे हैं।

इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण है अमेरिकी साम्राज्यवादियों की सापेक्षिक ताकत में गिरावट। विश्व के सकल उत्पादन में तो अमेरिका का हिस्सा घटा ही है, वैश्विक स्तर पर इसकी वर्चस्व की स्थिति से होने वाले इसके फायदों में भी गिरावट आई है। किसी देश की मुद्रा को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा की हैसियत हासिल होना उसे बहुत सारे लाभ दिलाता है। सबसे बड़ा और ताकतवर ही नहीं, दूसरों से बहुत आगे रहने वाला देश ही यह स्थिति हासिल कर पाता है। उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन की यही स्थिति थी। दूसरे विश्व युद्ध के बाद अमेरिका को यह स्थिति हासिल हुई। उसकी मुद्रा डॉलर वैश्विक मुद्रा बन गयी। यही नहीं, उसे ब्रेटन वुड्स व्यवस्था के तहत औपचारिक वर्चस्व की स्थिति हासिल हुई।

लेकिन पिछले कुछ सालों में डॉलर की स्थिति लगातार कमजोर होती गई है। दूसरी मुद्राओं के मुकाबले उसका अवमूल्यन होता गया है। मार्च 2002 से सितंबर 2007 के बीच डॉलर यूरो के मुकाबले लगभग 40 प्रतिशत, पाउण्ड के मुकाबले लगभग 30 प्रतिशत तथा येन के मुकाबले लगभग 15 प्रतिशत गिरा। इस सापेक्षिक गिरावट से ज्यादा महत्वपूर्ण रही वैकल्पिक मुद्राओं की तलाश। हालांकि अभी भी

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा भंडार में डॉलर का हिस्सा लगभग दो तिहाई तथा यूरो का हिस्सा एक चौथाई है लेकिन यह लगातार चर्चा और चिंता का विषय बना हुआ है कि कौन सी मुद्रा या मुद्राओं का समूह डॉलर को प्रतिस्थापित करे। आज लगातार बीसवीं सदी की शुरुआत से तुलना की जा रही है जब इंग्लैण्ड का पाउण्ड स्टर्लिंग अपनी वर्चस्व की स्थिति खोता जा रहा था लेकिन डॉलर उसका विकल्प नहीं बन पाया था।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा से होने वाले लाभों के चलते अमेरिकी साम्राज्यवादी इसकी इस स्थिति को बचाने के लिए लगातार संघर्ष कर रहे हैं। जड़ता और स्पष्ट विकल्पहीनता की स्थिति में बाकी देश भी डॉलर में लेन-देन किये जा रहे हैं लेकिन तब भी संक्रमण कालीन हालात से सभी रूबरू हैं। समूची दुनिया की वित्त व्यवस्था के एकीकरण और अपने विदेशी मुद्रा भंडार के अवमूल्यन के चलते दूसरे देश डॉलर के तीखे अवमूल्यन या विस्थापन के पक्षधर नहीं हैं। लेकिन क्रमिक परिवर्तन से सारे ही रूबरू हैं।

1990 के दशक के मध्य से ही अमेरिका का चालू खाता ऋणात्मक रहा है। वह लगातार बढ़ता गया है। इसी तरह विदेशियों द्वारा इसकी परिसम्पत्तियों की खरीद भी बढ़ती गई है। 1990 के दशक से ही परिसम्पत्तियों के मामले में भी अमेरिकी साम्राज्यवादियों की स्थिति ऋणात्मक रही है। जापान और चीन अमेरिका के बड़े कर्जदाता देश हैं। अमेरिका के बढ़ते कर्जे का जिक्र पहले ही किया जा चुका है। ये सारे मिलकर अमेरिका की वैश्विक हैसियत में नीचे की ओर दबाव डालते हैं। ऊपर से अपनी वैश्विक चौधराहट को बचाए रखने की कोशिश, सेना पर अतिशय खर्च तथा सारी दुनिया की जनता का प्रतिरोध इसे और कमजोर होने की ओर धकेलता है।

लेकिन अमेरिकी साम्राज्यवादियों को विस्थापित करने की ताकत यूरोपीय संघ में नहीं है। यह अभी भी बहुत ढीला-ढाला संघ है और बहुत सारे अंतर्विरोधों से ग्रस्त। जापानी साम्राज्यवादी पिछले दो दशक से ठहराव को झेल रहे हैं और अमेरिकी साम्राज्यवादियों को उनकी 1970 व 80 के दशक वाली चुनौती आज कहीं नहीं दिखाई देती। रूस तो और भी पीछे है। ऐसे में अमेरिकी साम्राज्यवादियों की लगातार कमजोर होती जाती स्थिति के बावजूद संक्रमण उलझाव भरा और दिशाविहीन है।

जब वर्तमान संकट गहराया तो वैश्विक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए साम्राज्यवादियों ने G-8 के अपने क्लब को पर्याप्त नहीं पाया। इसके लिए उन्होंने G-20 को मंच बनाया। G-20 में साम्राज्यवादी देशों सहित तीसरी दुनिया के कुछ प्रमुख देश सम्मिलित हैं।

वर्तमान संकट के दौरान G-20 का प्रमुखता से उभर कर आना दुनिया के पैमाने पर बदलते शक्ति संतुलन को दर्शाता है तो साम्राज्यवादियों की चाल को भी। वर्तमान पूंजीवादी विश्व में चीन, भारत, ब्राजील,मैक्सिको और दक्षिण अफ्रीका

तालिका-9

कुछ देशों के बैंकों के मालिकाने की संरचना (%)

देश	1990			2002		
	देशी		विदेशी	देशी		विदेशी
	निजी	सरकारी		निजी	सरकारी	
चीन	0	100	0	0	98	2
इंडोनेशिया	–	–	4	37	51	13
भारत	4	91	5	12	80	8
दक्षिण कोरिया	75	21	4	62	30	8
फिलीपीन्स	84	7	9	70	12	18
थाइलैण्ड	82	13	5	51	31	18
अर्जेन्टीना	–	36	10	19	33	48
ब्राजील	30	64	6	27	46	27
चिली	62	19	19	46	13	42
मेक्सिको	1	97	2	18	0	82
पेरू	41	55	4	43	11	46
वेनेजुएला	93	6	1	39	27	34
चेक रिपब्लिक	12	78	10	14	4	82
इस्टोनिया	–	–	–	1	0	99
हंगरी	9	81	10	11	27	62
पोलैण्ड	17	80	3	10	17	63
रूस	–	–	6	23	68	9
स्लोवाकिया	–	–	0	9	5	85

(स्रोत : EPW, दिसंबर 15, 2007)

यह तालिका जो बयान करती है वह बहुत महत्वपूर्ण है। पूंजीवाद में बैंक और वित्त का क्षेत्र अत्यंत अहम् है। एक तरीके से वह पूंजीवाद की जीवन रेखा है। इसलिए इस क्षेत्र पर नियंत्रण भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के इस दौर में जब वित्त पूंजी को मुक्त प्रवाह की सुविधा उपलब्ध हो तब यह जीवन-मरण का प्रश्न बन जाता है

यह तालिका मूलतः तीन क्षेत्रों के देशों की बैंकिंग संरचना में परिवर्तन को दिखाती है- मध्य व पूर्वी यूरोप, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा लैटिन अमेरिका। तीनों ही क्षेत्रों में 1990 व 2002 के बीच बैंकिंग संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए दीखते हैं। यहां गौर करने की बात है कि अक्सर ही ये परिवर्तन इन देशों में आये हुए संकटों का फायदा उठाकर किये गये हैं। संकटों से उबारने के लिए साम्राज्यवादियों और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की ये शर्त रही हैं। संकटों का फायदा उठाकर साम्राज्यवादियों ने इनकी बैंकिंग और वित्तीय व्यवस्था पर कब्जा कर लिया है।

मध्य और पूर्वी यूरोप के देशों में साम्राज्यवादियों ने 2002 तक बैंकिंग क्षेत्र पर 60 से 99 प्रतिशत तक कब्जा कर लिया था। ये सभी भूतपूर्व समाजवादी देश थे जिनकी संशोधनवादी सत्ताओं का 1989-90 में पतन हो गया था। तब तक इनके बैंक मूलतः सरकारी थे। लेकिन खुले पूंजीवाद की ओर बढ़ते समय ये देश जिस भयंकर संकट का शिकार हुए उसका फायदा उठाकर साम्राज्यवादियों ने इनकी अर्थव्यवस्था पर कब्जा कर लिया। बल्कि 'शॉक थिरेपी' के नाम पर साम्राज्यवादियों ने ही यहां संकट घनीभूत किया। इनकी अर्थव्यवस्थाओं पर साम्राज्यवादियों द्वारा कब्जे की एक अभिव्यक्ति, अत्यंत महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति, इनके बैंकिंग और वित्तीय तंत्र पर कब्जा है। साम्राज्यवादी इसी के लिए दूसरे विश्व युद्ध के बाद से ही प्रयास कर रहे थे। उनका यहां 'लोकतंत्र' कायम करने का मिशन अब पूरा हो गया था। इन्हें ही अमरीकी साम्राज्यवादियों ने 'नये यूरोप' का नाम दिया क्योंकि इन्होंने इराक पर अमेरिकी-ब्रिटिश हमले का समर्थन किया था। अभी वर्तमान संकट के आने तक साम्राज्यवादी इन्हें उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं की संज्ञा दे रहे थे और इनकी तारीफ कर रहे थे। इनको लेकर यूरोपीय, रूसी और अमेरिकी साम्राज्यवादियों में खींचतान मची हुई है।

वर्तमान संकट में इनका क्या हाल हुआ? वर्तमान संकट में सबसे बुरी तरह से प्रभावित होने वाले देशों में ये देश हैं। संकट में इनकी वित्तीय व्यवस्था और उत्पादन तथा वितरण बहुत बुरी तरह लड़खड़ा गया। बाल्टिक देशों में तो पूरी अराजकता की स्थिति पैदा हो गयी। इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर साम्राज्यवादियों की पकड़ के चलते यह होना भी था। तेजी के समय साम्राज्यवादी इन्हें बेतहाशा लूट रहे थे और संकट के समय इन पर सारा बोझ डालकर डूबने के लिए छोड़ दिया। इस संकट ने इन देशों को साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के परिणामों का बुरी तरह एहसास कराया। कहने की बात नहीं, इसका ज्यादातर खामियाजा मजदूर वर्ग को ही भुगतना पड़ा।

1997-98 तक दक्षिण पूर्व एशिया के कुछ देशों को साम्राज्यवादियों ने एशियाई शेर के नाम से प्रचारित कर रखा था। साम्राज्यवादी सटोरिया पूंजी यहां धड़ल्ले से जा रही थी। इसकी करतूतों के फलस्वरूप इन देशों में जुलाई अगस्त 1997 में भंयकर संकट फूट पड़ा। इनकी मुद्राएं धराशाई हो गईं और उत्पादन में तेज गिरावट आई। इनकी तारीफों का पुल बांधने वाले साम्राज्यवादी अब इनकी अर्थव्यवस्थाओं में भाई-भतीजावाद देखने लगे। लेकिन असल में उन्होंने यह किया कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की मदद से इन देशों की कंपनियों पर कब्जा कर लिया। बैंकों के क्षेत्र में भी उन्होंने अपना हिस्सा बढ़ा लिया हालांकि वह उस स्तर तक नहीं हुआ जिस स्तर तक मध्य व पूर्वी यूरोप में हुआ था। यहां यह कहना होगा कि इन देशों में निजी बैंकों का प्रभुत्व है और इन बैंकों में साम्राज्यवादियों का दखल है।

वर्तमान संकट में ये देश उतनी बुरी तरह प्रभावित नहीं हुए जैसे 1997-98 के संकट में। तब तो उनकी अर्थव्यवस्थाएं धराशाई ही हो गई थीं। इस बार धराशाई होने से बचने की दो वजहें रहीं। एक तो इन देशों ने पिछले संकट से सबक लेकर

विदेशी मुद्रा भंडार जमा करने पर जोर दिया था जिससे संकट के समय मुद्राओं को बचाया जा सके। दूसरे, पिछले सालों में इनकी अर्थव्यवस्थाओं का चीन के साथ संबंध बढ़ा है और चीन इस संकट में अपेक्षाकृत कम प्रभावित हुआ है। जापान के करीब दो दशकों से ठहराव का शिकार होने के चलते इन देशों का जापान से संबंध ढीला होता गया है और चीन से बढ़ता गया है।

लैटिन अमेरिका के देशों की अर्थव्यवस्थाओं में भी साम्राज्यवादियों का दखल 1990 के दशक में बढ़ा। 1982 के संकट से लम्बे समय तक पस्त रहने के बाद जब ये देश थोड़ा संभलने शुरू हुए तब तक सटोरिया पूंजी का शैतानी खेल और भी ऊंचाइयों तक पहुंच गया था। इसके चलते 1994 में मैक्सिको को, 1998 में ब्राजील को तथा 2001 में अर्जेन्टीना को भंयकर संकट का शिकार होना पड़ा। एक बार फिर साम्राज्यवादी गिद्धों ने इन्हें संकट के समय नोच-नोच कर खाया। इनके बैंकिंग व वित्तीय क्षेत्र पर साम्राज्यवादियों की पकड़ बहुत मजबूत हो गई। नाफ्टा में शामिल मैक्सिको में तो बैंकिंग क्षेत्र में सरकारी हिस्सा शून्य हो गया। इसके 82 प्रतिशत पर साम्राज्यवादियों का कब्जा हो गया।

इन देशों में साम्राज्यवादियों की भंयकर लूट की प्रतिक्रिया में इस दशक के शुरू से एक के बाद एक ऐसी सरकारें आई हैं जो साम्राज्यवाद (अमेरिकी साम्राज्यवाद) विरोधी तेवर दिखाती हैं तथा जनता की भलाई और समाजवाद की बात करती हैं। लेकिन वे साम्राज्यवाद से सम्बंध विच्छेद करने में अक्षम हैं। इसीलिए इस संकट के घनीभूत होने पर वे बुरी तरह शिकार हुए। इसी को स्वर देते हुए ब्राजील के लूला को कहना पड़ा कि गरीब देशों को आर्थिक तेजी से तो फायदा नहीं होता लेकिन आर्थिक संकट का खामियाजा सबसे ज्यादा उन्हें ही उठाना पड़ता है। इन देशों को इसलिए और ज्यादा परेशानी का सामना करना पड़ा कि इनमें से अधिकांश कच्चे मालों के प्रमुख निर्यातक हैं और संकट के गहराने पर कच्चे मालों के दाम तेजी से गिरे। जब कच्चे तेल का दाम गिरकर 40 डॉलर प्रति बैरल तक पहुंच गया था तो ह्यूगो चावेज की बोलती बंद हो गयी थी।

इससे भी ज्यादा बुरी स्थिति अफ्रीकी देशों की है। अधिकांश अफ्रीकी देश किसी एक फसल, किसी एक खनिज पदार्थ या तेल के निर्यात पर निर्भर हैं। साम्राज्यवादी इन्हीं की लूट के लिए यहां लूट-मार मचाये हुए हैं। गृह युद्ध, विद्रोहों और साम्राज्यवादियों के हमले से त्रस्त ये देश वैसे ही विध्वंस झेल रहे हैं। ऐसे में विश्व आर्थिक संकट ने उनकी कमर तोड़ दी। वैश्विक आर्थिक संकट से सबसे बुरी तरह प्रभावित होने वाले देशों में कई अफ्रीकी देश हैं। यह वैसे ही है जैसे बहुत कमजोर शरीर किसी महामारी की चपेट में आ जाय। यह साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की ही विशेषता है कि इसका सबसे उपेक्षित कोना सबसे ज्यादा मार खा रहा है।

वर्तमान संकट में तेज गति से हिचकोले खाने वाले देशों में खाड़ी के देश भी हैं। मध्ययुगीन शेखशाहियों वाले देश साम्राज्यवादी वित्त पूंजी से क्यों हिचकोले खाये? इसके तीन कारण हैं। इन देशों का प्रमुख उत्पाद तेल और गैस है। बाद के समय

में इनके दाम तेजी से गिरे और इसने इन देशों की आय को बुरी तरह से प्रभावित किया। ये देश या यूं कहें कि इनके शासक तेल से प्राप्त आय का ज्यादातर हिस्सा साम्राज्यवादी देशों में निवेश करते रहे हैं। साम्राज्यवादी बैंकों, वित्तीय संस्थानों से लेकर उत्पादक-वितरक कंपनियों और जुआघरों तक में इनकी हिस्सेदारी है। इसलिए इनके संकटग्रस्त होने पर शेखशाहियों पर प्रभाव पड़ना ही था। इसके अलावा साम्राज्यवादी दुबई जैसी जगहों को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र के रूप में विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं। इसमें वे भारी निवेश कर रहे हैं। इसी के चलते वह स्थिति पैदा होती है कि दुबई जैसे कुछ लाख के देश (बल्कि यू.ए.ई. नामक देश के हिस्से) के बैंक के संकटग्रस्त होने पर दुनिया के वित्तीय बाजारों में सिहरन होने लगती है।

साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के इस दौर में वैश्विक पूंजीवाद का आज यही ताना-बाना है। साम्राज्यवादी वित्त पूंजी आज इसी ताने-बाने के माध्यम से लाभ और अति लाभ कमा रही है। वह इसी के माध्यम से सारी दुनिया के मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनता पर कहर ढा रही है।

VIII

अंत में

साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग यह साबित करने में लगा हुआ है कि वर्तमान संकट गंभीर तो है लेकिन यह कुछ गलत नीतियों का नतीजा है। यह वित्तीय क्षेत्र में नियमन और नियंत्रण के ढीले हो जाने का, लालची सट्टेबाजों और केवल तात्कालिक फायदा देखने वाले कंपनी प्रमुखों की करतूतों का या वैश्विक असंतुलन का नतीजा है। साम्राज्यवादियों का एक हिस्सा तो यह बताने में लगा हुआ है कि पूंजीवाद अपनी पैदाइश से ही अपने संकटों से गुजरता रहा है और वह इस संकट से भी गुजर जायेगा। इन सबके लिए मामला किसी तरह से इस संकट से गुजर जाने का तथा फिर व्यवस्था में यहां-वहां कुछ कतर-ब्योंत कर देने का है। जो लोग बहुत उग्र होने का दम भरते हैं वे भी 1970 से पहले की स्थिति बहाल करना चाहते हैं, वे कीन्स के नुस्खे की ओर लौटना चाहते हैं।

परन्तु पिछले दशक भर के अनुभव से स्पष्ट है कि उदारीकृत पूंजीवाद की वर्तमान वैश्विक पूंजीवादी दुनिया अधिकाधिक उस ओर बढ़ती जा रही है जिधर अपने अंतर्विरोधों को धूमिल कर पाना उसके लिए मुश्किल होता जा रहा है। 2001-02 के संकट से उबरने के लिए जान बूझकर एक वित्तीय बुलबुले को फुलाया गया और यह उस आधार के ऊपर जिसमें सट्टेबाजी पहले ही आसमान छू रही थी। इस बुलबुले का फूटना पहले से तय था और जब यह फूटा तो अपने साथ समूची वित्तीय व्यवस्था

को रसातल में ले जाने लगा।

ऐसे में साम्राज्यवादी पूंजी क्या करे? वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था की जो संरचना है उसमें इसके लिए क्या रास्ता बचता है? यदि वह चरम पर पहुंचे अंतर्विरोधों को धूमिल करने की ओर बढ़ती है तो उसका मुनाफा घटता है। दूसरी ओर यदि वह मुनाफे को बचाती है तो अंतर्विरोध तीखे होते हैं? पूंजी इस अंतर्विरोध का क्या करे?

पूंजीपति वर्ग के पास इस अंतर्विरोध का कोई समाधान नहीं है। वह जो कुछ भी करेगा वह उसे और अधिक उधर ले जायेगा जिधर उसे सर्वहारा वर्ग उसकी कब्र खोदता नजर आयेगा।

■■■